॥श्रीराम॥

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासविरचित

॥ श्रीरामचरितमानस ॥

॥श्रीहरि:॥

श्रीरामचरितमानस की विषय-सूची

अरण्यकाण्ड

- मंगलाचरण
- जयंत की कुटिलता और फल प्राप्ति
- अत्रि मिलन एवं स्तुति
- श्री सीता-अनसूया मिलन और श्री सीताजी को अनसूयाजी का पतिव्रत धर्म कहना
- श्री रामजी का आगे प्रस्थान, विराध वध और शरभंग प्रसंग
- राक्षस वध की प्रतिज्ञा करना, सुतीक्ष्णजी का प्रेम, अगस्त्य मिलन, अगस्त्य संवाद
- राम का दंडकवन प्रवेश, जटायु मिलन, पंचवटी निवास और श्री राम-लक्ष्मण संवाद
- शूर्पणखा की कथा, शूर्पणखा का खरदूषण के पास जाना और खरदूषणादि का वध
- शूर्पणखा का रावण के निकट जाना, श्री सीताजी का अग्नि प्रवेश और माया सीता
- मारीच प्रसंग और स्वर्णमृग रूप में मारीच का मारा जाना, सीताजी द्वारा लक्ष्मण को भेजना
- श्री सीताहरण और श्री सीता विलाप
- जटायु-रावण युद्ध, अशोक वाटिका में सीताजी को रखना
- श्री रामजी का विलाप, जटायु का प्रसंग, कबन्ध उद्धार
- शबरी पर कृपा, नवधा भक्ति उपदेश और पम्पासर की ओर प्रस्थान
- नारद-राम संवाद
- संतों के लक्षण और सत्संग भजन के लिए प्रेरणा

श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

॥ श्रीरामचरितमानस ॥

तृतीय सोपान

॥ अरण्यकाण्ड ॥

श्लोक :

मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं
वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघनध्वान्तापहं तापहम्।
मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्वःसम्भवं शंकरं
वन्दे ब्रह्मकुलं कलंकशमनं श्रीरामभूपप्रियम्॥1॥

धर्म रूपी वृक्ष के मूल, विवेक रूपी समुद्र को आनंद देने वाले पूर्णचन्द्र, वैराग्य रूपी कमल के (विकसित करने वाले) सूर्य, पाप रूपी घोर अंधकार को निश्चय ही मिटाने वाले, तीनों तापों को हरने वाले, मोह रूपी बादलों के समूह को छिन्न-भिन्न करने की विधि (क्रिया) में आकाश से उत्पन्न पवन स्वरूप, ब्रह्माजी के वंशज (आत्मज) तथा कलंकनाशक, महाराज श्री रामचन्द्रजी के प्रिय श्री शंकरजी की मैं वंदना करता हूँ॥1॥

सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुंदरं
पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरम्।

राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे॥2॥

जिनका शरीर जलयुक्त मेघों के समान सुंदर (श्यामवर्ण) एवं आनंदघन है, जो सुंदर (वल्कल का) पीत वस्त्र धारण किए हैं, जिनके हाथों में बाण और धनुष हैं, कमर उत्तम तरकस के भार से सुशोभित है, कमल के समान विशाल नेत्र हैं और मस्तक पर जटाजूट धारण किए हैं, उन अत्यन्त शोभायमान श्री सीताजी और लक्ष्मणजी सहित मार्ग में चलते हुए आनंद देने वाले श्री रामचन्द्रजी को मैं भजता हूँ॥2॥

सोरठा :

उमा राम गुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोह बिमूढ़ जे हरि बिमुख न धर्म रति॥

हे पार्वती! श्री रामजी के गुण गूढ़ हैं, पण्डित और मुनि उन्हें समझकर वैराग्य प्राप्त करते हैं, परन्तु जो भगवान से विमुख हैं और जिनका धर्म में प्रेम नहीं है, वे महामूढ़ (उन्हें सुनकर) मोह को प्राप्त होते हैं।

चौपाई :

पुर नर भरत प्रीति मैं गाई। मति अनुरूप अनूप सुहाई॥
अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन। करत जे बन सुर नर मुनि भावन॥1॥

पुरवासियों के और भरतजी के अनुपम और सुंदर प्रेम का मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार गान किया। अब देवता, मनुष्य और मुनियों के मन को भाने वाले प्रभु श्री रामचन्द्रजी के वे अत्यन्त पवित्र चरित्र सुनो, जिन्हें वे वन में कर रहे हैं॥1॥

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए॥
सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर॥2॥

एक बार सुंदर फूल चुनकर श्री रामजी ने अपने हाथों से भाँति-भाँति के गहने बनाए और सुंदर स्फटिक शिला पर बैठे हुए प्रभु ने आदर के साथ वे गहने श्री सीताजी को पहनाए॥2॥

सुरपति सुत धरि बायस बेषा। सठ चाहत रघुपति बल देखा॥
जिमि पिपीलिका सागर थाहा। महा मंदमति पावन चाहा॥3॥

देवराज इन्द्र का मूर्ख पुत्र जयन्त कौए का रूप धरकर श्री रघुनाथजी का बल देखना चाहता है। जैसे महान मंदबुद्धि चींटी समुद्र का थाह पाना चाहती हो॥3॥

सीता चरन चोंच हति भागा। मूढ़ मंदमति कारन कागा॥
चला रुधिर रघुनायक जाना। सींक धनुष सायक संधाना॥4॥

वह मूढ़, मंदबुद्धि कारण से (भगवान के बल की परीक्षा करने के लिए) बना हुआ कौआ सीताजी के चरणों में चोंच मारकर भागा। जब रक्त बह चला, तब श्री रघुनाथजी ने जाना और धनुष पर सींक (सरकंडे) का बाण संधान किया॥4॥

दोहा :

अति कृपाल रघुनायक सदा दीन पर नेह।
ता सन आइ कीन्ह छलु मूरख अवगुन गेह॥1॥

श्री रघुनाथजी, जो अत्यन्त ही कृपालु हैं और जिनका दीनों पर सदा प्रेम रहता है, उनसे भी उस अवगुणों के घर मूर्ख जयन्त ने आकर छल किया॥1॥

चौपाई :

प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा। चला भाजि बायस भय पावा॥
धरि निज रूप गयउ पितु पाहीं। राम बिमुख राखा तेहि नाहीं॥1॥

मंत्र से प्रेरित होकर वह ब्रह्मबाण दौड़ा। कौआ भयभीत होकर भाग चला। वह अपना असली रूप धरकर पिता इन्द्र के पास गया, पर श्री रामजी का विरोधी जानकर इन्द्र ने उसको नहीं रखा॥1॥

भा निरास उपजी मन त्रासा। जथा चक्र भय रिषि दुर्बासा॥
ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका। फिरा श्रमित ब्याकुल भय सोका॥2॥

तब वह निराश हो गया, उसके मन में भय उत्पन्न हो गया, जैसे दुर्वासा ऋषि को चक्र से भय हुआ था। वह ब्रह्मलोक, शिवलोक आदि समस्त लोकों में थका हुआ और भय-शोक से व्याकुल होकर भागता फिरा॥2॥

काहूँ बैठन कहा न ओही। राखि को सकइ राम कर द्रोही ॥
मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ बिष सुनु हरिजाना॥3॥

(पर रखना तो दूर रहा) किसी ने उसे बैठने तक के लिए नहीं कहा। श्री रामजी के द्रोही को कौन रख सकता है? (काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) हे गरुड़ ! सुनिए, उसके लिए माता मृत्यु के समान, पिता यमराज के समान और अमृत विष के समान हो जाता है॥3॥

मित्र करइ सत रिपु कै करनी। ता कहँ बिबुधनदी बैतरनी॥
सब जगु ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता॥4॥

मित्र सैकड़ों शत्रुओं की सी करनी करने लगता है। देवनदी गंगाजी उसके लिए वैतरणी (यमपुरी की नदी) हो जाती है। हे भाई! सुनिए, जो श्री रघुनाथजी के विमुख होता है, समस्त जगत उनके लिए अग्नि से भी अधिक गरम (जलाने वाला) हो जाता है॥4॥

नारद देखा बिकल जयंता। लगि दया कोमल चित संता॥
पठवा तुरत राम पहिं ताही। कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही॥5॥

नारदजी ने जयन्त को व्याकुल देखा तो उन्हें दया आ गई, क्योंकि संतों का चित्त बड़ा कोमल होता है। उन्होंने उसे (समझाकर) तुरंत श्री रामजी के पास भेज दिया। उसने (जाकर) पुकारकर कहा- हे शरणागत के हितकारी! मेरी रक्षा कीजिए॥5॥

आतुर सभय गहेसि पद जाई। त्राहि त्राहि दयाल रघुराई॥
अतुलित बल अतुलित प्रभुताई। मैं मतिमंद जानि नहीं पाई॥6॥

आतुर और भयभीत जयन्त ने जाकर श्री रामजी के चरण पकड़ लिए (और कहा-) हे दयालु रघुनाथजी! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। आपके अतुलित बल और आपकी अतुलित प्रभुता (सामर्थ्य) को मैं मन्दबुद्धि जान नहीं पाया था॥6॥

निज कृत कर्म जनित फल पायउँ। अब प्रभु पाहि सरन तकि आयउँ॥
सुनि कृपाल अति आरत बानी। एकनयन करि तजा भवानी॥7॥

अपने कर्म से उत्पन्न हुआ फल मैंने पा लिया। अब हे प्रभु! मेरी रक्षा कीजिए। मैं आपकी शरण तक कर आया हूँ। (शिवजी कहते हैं-) हे पार्वती! कृपालु श्री रघुनाथजी ने उसकी अत्यंत आर्त (दुःख भरी) वाणी सुनकर उसे एक आँख का काना करके छोड़ दिया॥7॥

सोरठा :

कीन्ह मोह बस द्रोह जद्यपि तेहि कर बध उचित।
प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपाल रघुबीर सम॥2॥

उसने मोहवश द्रोह किया था, इसलिए यद्यपि उसका वध ही उचित था, पर प्रभु ने कृपा करके उसे छोड़ दिया। श्री रामजी के समान कृपालु और कौन होगा?॥2॥

चौपाई :

रघुपति चित्रकूट बसि नाना। चरित किए श्रुति सुधा समाना॥
बहुरि राम अस मन अनुमाना। होइहि भीर सबहिं मोहि जाना॥1॥

चित्रकूट में बसकर श्री रघुनाथजी ने बहुत से चरित्र किए, जो कानों को अमृत के समान (प्रिय) हैं। फिर (कुछ समय पश्चात) श्री रामजी ने मन में ऐसा अनुमान किया कि मुझे सब लोग जान गए हैं, इससे (यहाँ) बड़ी भीड़ हो जाएगी॥1॥

सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई। सीता सहित चले द्वौ भाई॥
अत्रि के आश्रम जब प्रभु गयऊ। सुनत महामुनि हरषित भयऊ॥2॥

(इसलिए) सब मुनियों से विदा लेकर सीताजी सहित दोनों भाई चले! जब प्रभु अत्रिजी के आश्रम

में गए, तो उनका आगमन सुनते ही महामुनि हर्षित हो गए॥2॥

पुलकित गात अत्रि उठि धाए। देखि रामु आतुर चलि आए॥
करत दंडवत मुनि उर लाए। प्रेम बारि द्वौ जन अन्हवाए॥3॥

शरीर पुलकित हो गया, अत्रिजी उठकर दौड़े। उन्हें दौड़े आते देखकर श्री रामजी और भी शीघ्रता से चले आए। दण्डवत करते हुए ही श्री रामजी को (उठाकर) मुनि ने हृदय से लगा लिया और प्रेमाश्रुओं के जल से दोनों जनों को (दोनों भाइयों को) नहला दिया॥3॥

देखि राम छबि नयन जुड़ाने। सादर निज आश्रम तब आने॥
करि पूजा कहि बचन सुहाए। दिए मूल फल प्रभु मन भाए॥4॥

श्री रामजी की छवि देखकर मुनि के नेत्र शीतल हो गए। तब वे उनको आदरपूर्वक अपने आश्रम में ले आए। पूजन करके सुंदर वचन कहकर मुनि ने मूल और फल दिए, जो प्रभु के मन को बहुत रुचे॥4॥

सोरठा :

प्रभु आसन आसीन भरि लोचन सोभा निरखि।
मुनिबर परम प्रबीन जोरि पानि अस्तुति करत॥3॥

प्रभु आसन पर विराजमान हैं। नेत्र भरकर उनकी शोभा देखकर परम प्रवीण मुनि श्रेष्ठ हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे॥3॥

छन्द :

नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु शील कोमलं॥
भजामि ते पदांबुजं। अकामिनां स्वधामदं॥1॥

हे भक्त वत्सल! हे कृपालु! हे कोमल स्वभाव वाले! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। निष्काम पुरुषों को अपना परमधाम देने वाले आपके चरण कमलों को मैं भजता हूँ॥1॥

निकाम श्याम सुंदरं। भवांबुनाथ मंदरं॥
प्रफुल्ल कंज लोचनं। मदादि दोष मोचनं॥2॥

आप नितान्त सुंदर श्याम, संसार (आवागमन) रूपी समुद्र को मथने के लिए मंदराचल रूप, फूले हुए कमल के समान नेत्रों वाले और मद आदि दोषों से छुड़ाने वाले हैं॥2॥

प्रलंब बाहु विक्रमं। प्रभोऽप्रमेय वैभवं॥
निषंग चाप सायकं। धरं त्रिलोक नायकं॥3॥

हे प्रभो! आपकी लंबी भुजाओं का पराक्रम और आपका ऐश्वर्य अप्रमेय (बुद्धि के परे अथवा असीम) है। आप तरकस और धनुष-बाण धारण करने वाले तीनों लोकों के स्वामी,॥3॥

दिनेश वंश मंडनं। महेश चाप खंडनं॥
मुनींद्र संत रंजनं। सुरारि वृंद भंजनं॥4॥

सूर्यवंश के भूषण, महादेवजी के धनुष को तोड़ने वाले, मुनिराजों और संतों को आनंद देने वाले तथा देवताओं के शत्रु असुरों के समूह का नाश करने वाले हैं॥4॥

मनोज वैरि वंदितं। अजादि देव सेवितं॥
विशुद्ध बोध विग्रहं। समस्त दूषणापहं॥5॥

आप कामदेव के शत्रु महादेवजी के द्वारा वंदित, ब्रह्मा आदि देवताओं से सेवित, विशुद्ध ज्ञानमय विग्रह और समस्त दोषों को नष्ट करने वाले हैं॥5॥

नमामि इंदिरा पतिं। सुखाकरं सतां गतिं॥
भजे सशक्ति सानुजं। शची पति प्रियानुजं॥6॥

हे लक्ष्मीपते! हे सुखों की खान और सत्पुरुषों की एकमात्र गति! मैं आपको नमस्कार करता हूँ! हे शचीपति (इन्द्र) के प्रिय छोटे भाई (वामनजी)! स्वरूपा-शक्ति श्री सीताजी और छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित आपको मैं भजता हूँ॥6॥

त्वदंघ्रि मूल ये नराः। भजंति हीन मत्सराः॥
पतंति नो भवार्णवे। वितर्क वीचि संकुले॥7॥

जो मनुष्य मत्सर (डाह) रहित होकर आपके चरण कमलों का सेवन करते हैं, वे तर्क-वितर्क (अनेक प्रकार के संदेह) रूपी तरंगों से पूर्ण संसार रूपी समुद्र में नहीं गिरते (आवागमन के चक्कर में नहीं पड़ते)॥7॥

विविक्त वासिनः सदा। भजंति मुक्तये मुदा॥
निरस्य इंद्रियादिकं। प्रयांतिते गतिं स्वकं॥8॥

जो एकान्तवासी पुरुष मुक्ति के लिए, इन्द्रियादि का निग्रह करके (उन्हें विषयों से हटाकर) प्रसन्नतापूर्वक आपको भजते हैं, वे स्वकीय गति को (अपने स्वरूप को) प्राप्त होते हैं॥8॥

तमेकमद्भुतं प्रभुं। निरीहमीश्वरं विभुं॥
जगद्गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलं॥9॥

उन (आप) को जो एक (अद्वितीय), अद्भुत (मायिक जगत से विलक्षण), प्रभु (सर्वसमर्थ), इच्छारहित, ईश्वर (सबके स्वामी), व्यापक, जगद्गुरु, सनातन (नित्य), तुरीय (तीनों गुणों से सर्वथा परे) और केवल (अपने स्वरूप में स्थित) हैं॥9॥

भजामि भाव वल्लभं। कुयोगिनां सुदुर्लभं॥
स्वभक्त कल्प पादपं। समं सुसेव्यमन्वहं॥10॥

(तथा) जो भावप्रिय, कुयोगियों (विषयी पुरुषों) के लिए अत्यन्त दुर्लभ, अपने भक्तों के लिए कल्पवृक्ष (अर्थात्‌ उनकी समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले), सम (पक्षपातरहित) और सदा सुखपूर्वक सेवन करने योग्य हैं, मैं निरंतर भजता हूँ॥10॥

अनूप रूप भूपतिं। नतोऽहमुर्विजा पतिं॥
प्रसीद मे नमामि ते। पदाब्ज भक्ति देहि मे॥11॥

हे अनुपम सुंदर! हे पृथ्वीपति! हे जानकीनाथ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मुझ पर प्रसन्न होइए, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। मुझे अपने चरण कमलों की भक्ति दीजिए॥11॥

पठंति ये स्तवं इदं। नरादरेण ते पदं॥
व्रजंति नात्र संशयं। त्वदीय भक्ति संयुताः॥12॥

जो मनुष्य इस स्तुति को आदरपूर्वक पढ़ते हैं, वे आपकी भक्ति से युक्त होकर आपके परम पद को प्राप्त होते हैं, इसमें संदेह नहीं॥12॥

दोहा :

बिनती करि मुनि नाइ सिरु कह कर जोरि बहोरि।
चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजै मति मोरि॥4॥

मुनि ने (इस प्रकार) विनती करके और फिर सिर नवाकर, हाथ जोड़कर कहा- हे नाथ! मेरी बुद्धि आपके चरण कमलों को कभी न छोड़े॥4॥

चौपाई :

अनुसुइया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुसील बिनीता॥
रिषिपतिनी मन सुख अधिकाई। आसिष देइ निकट बैठाई॥1॥

फिर परम शीलवती और विनम्र श्री सीताजी अनसूयाजी (आत्रिजी की पत्नी) के चरण पकड़कर उनसे मिलीं। ऋषि पत्नी के मन में बड़ा सुख हुआ। उन्होंने आशीष देकर सीताजी को पास बैठा लिया॥1॥

दिब्य बसन भूषन पहिराए। जे नित नूतन अमल सुहाए॥
कह रिषिबधू सरस मृदु बानी। नारिधर्म कछु ब्याज बखानी॥2॥

और उन्हें ऐसे दिव्य वस्त्र और आभूषण पहनाए, जो नित्य-नए निर्मल और सुहावने बने रहते हैं। फिर ऋषि पत्नी उनके बहाने मधुर और कोमल वाणी से स्त्रियों के कुछ धर्म बखान कर कहने लगीं॥2॥

मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी॥
अमित दानि भर्ता बयदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥3॥

हे राजकुमारी! सुनिए- माता, पिता, भाई सभी हित करने वाले हैं, परन्तु ये सब एक सीमा तक ही (सुख) देने वाले हैं, परन्तु हे जानकी! पति तो (मोक्ष रूप) असीम (सुख) देने वाला है। वह स्त्री अधम है, जो ऐसे पति की सेवा नहीं करती॥3॥

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी॥
बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥4॥

धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री- इन चारों की विपत्ति के समय ही परीक्षा होती है। वृद्ध, रोगी, मूर्ख, निर्धन, अंधा, बहरा, क्रोधी और अत्यन्त ही दीन-॥4॥

ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा॥5॥

ऐसे भी पति का अपमान करने से स्त्री यमपुर में भाँति-भाँति के दुःख पाती है। शरीर, वचन और मन से पति के चरणों में प्रेम करना स्त्री के लिए, बस यह एक ही धर्म है, एक ही व्रत है और एक ही नियम है॥5॥

जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं॥
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥6॥

जगत में चार प्रकार की पतिव्रताएँ हैं। वेद, पुराण और संत सब ऐसा कहते हैं कि उत्तम श्रेणी की पतिव्रता के मन में ऐसा भाव बसा रहता है कि जगत में (मेरे पति को छोड़कर) दूसरा पुरुष स्वप्न में भी नहीं है॥6॥

मध्यम परपति देखइ कैसें। भ्राता पिता पुत्र निज जैसें॥
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई॥7॥

मध्यम श्रेणी की पतिव्रता पराए पति को कैसे देखती है, जैसे वह अपना सगा भाई, पिता या पुत्र हो (अर्थात समान अवस्था वाले को वह भाई के रूप में देखती है, बड़े को पिता के रूप में और छोटे को पुत्र के रूप में देखती है।) जो धर्म को विचारकर और अपने कुल की मर्यादा समझकर बची रहती है, वह निकृष्ट (निम्न श्रेणी की) स्त्री है, ऐसा वेद कहते हैं॥7॥

बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई॥
पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई॥8॥

और जो स्त्री मौका न मिलने से या भयवश पतिव्रता बनी रहती है, जगत में उसे अधम स्त्री जानना। पति को धोखा देने वाली जो स्त्री पराए पति से रति करती है, वह तो सौ कल्प तक रौरव नरक में पड़ी रहती है॥8॥

छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी॥

बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई॥9॥

क्षणभर के सुख के लिए जो सौ करोड़ (असंख्य) जन्मों के दुःख को नहीं समझती, उसके समान दुष्टा कौन होगी। जो स्त्री छल छोड़कर पतिव्रत धर्म को ग्रहण करती है, वह बिना ही परिश्रम परम गति को प्राप्त करती है॥9॥

पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥10॥

किन्तु जो पति के प्रतिकूल चलती है, वह जहाँ भी जाकर जन्म लेती है, वहीं जवानी पाकर (भरी जवानी में) विधवा हो जाती है॥10॥

सोरठा :

सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।

जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय॥5 क॥

स्त्री जन्म से ही अपवित्र है, किन्तु पति की सेवा करके वह अनायास ही शुभ गति प्राप्त कर लेती है। (पतिव्रत धर्म के कारण ही) आज भी 'तुलसीजी' भगवान को प्रिय हैं और चारों वेद उनका यश गाते हैं॥5 (क)॥

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।

तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित॥5 ख॥

हे सीता! सुनो, तुम्हारा तो नाम ही ले-लेकर स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म का पालन करेंगी। तुम्हें तो श्री रामजी प्राणों के समान प्रिय हैं, यह (पतिव्रत धर्म की) कथा तो मैंने संसार के हित के लिए कही है॥5 (ख)॥

चौपाई :

सुनि जानकीं परम सुखु पावा। सादर तासु चरन सिरु नावा॥

तब मुनि सन कह कृपानिधाना। आयसु होइ जाउँ बन आना॥1॥

जानकीजी ने सुनकर परम सुख पाया और आदरपूर्वक उनके चरणों में सिर नवाया। तब कृपा की खान श्री रामजी ने मुनि से कहा- आज्ञा हो तो अब दूसरे वन में जाऊँ॥1॥

संतत मो पर कृपा करेहू। सेवक जानि तजेहु जनि नेहू॥

धर्म धुरंधर प्रभु कै बानी। सुनि सप्रेम बोले मुनि ग्यानी॥2॥

मुझ पर निरंतर कृपा करते रहिएगा और अपना सेवक जानकर स्नेह न छोड़िएगा। धर्म धुरंधर प्रभु श्री रामजी के वचन सुनकर ज्ञानी मुनि प्रेमपूर्वक बोले-॥2॥

जासु कृपा अज सिव सनकादी। चहत सकल परमारथ बादी॥

ते तुम्ह राम अकाम पिआरे। दीन बंधु मृदु बचन उचारे॥3॥

ब्रह्मा, शिव और सनकादि सभी परमार्थवादी (तत्ववेत्ता) जिनकी कृपा चाहते हैं, हे रामजी! आप वही निष्काम पुरुषों के भी प्रिय और दीनों के बंधु भगवान हैं, जो इस प्रकार कोमल वचन बोल रहे हैं॥3॥

अब जानी मैं श्री चतुराई। भजी तुम्हहि सब देव बिहाई॥
जेहि समान अतिसय नहिं कोई। ता कर सील कस न अस होई॥4॥

अब मैंने लक्ष्मीजी की चतुराई समझी, जिन्होंने सब देवताओं को छोड़कर आप ही को भजा। जिसके समान (सब बातों में) अत्यन्त बड़ा और कोई नहीं है, उसका शील भला, ऐसा क्यों न होगा?॥4॥

केहि बिधि कहौं जाहु अब स्वामी। कहहु नाथ तुम्ह अंतरजामी॥
अस कहि प्रभु बिलोकि मुनि धीरा। लोचन जल बह पुलक सरीरा॥5॥

मैं किस प्रकार कहूँ कि हे स्वामी! आप अब जाइए? हे नाथ! आप अन्तर्यामी हैं, आप ही कहिए। ऐसा कहकर धीर मुनि प्रभु को देखने लगे। मुनि के नेत्रों से (प्रेमाश्रुओं का) जल बह रहा है और शरीर पुलकित है॥5॥

छन्द :

तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंकज दिए।
मन ग्यान गुन गोतीत प्रभु मैं दीख जप तप का किए॥
जप जोग धर्म समूह तें नर भगति अनुपम पावई।
रघुबीर चरित पुनीत निसि दिन दास तुलसी गावई॥

मुनि अत्यन्त प्रेम से पूर्ण हैं, उनका शरीर पुलकित है और नेत्रों को श्री रामजी के मुखकमल में लगाए हुए हैं। (मन में विचार रहे हैं कि) मैंने ऐसे कौन से जप-तप किए थे, जिसके कारण मन, ज्ञान, गुण और इन्द्रियों से परे प्रभु के दर्शन पाए। जप, योग और धर्म समूह से मनुष्य अनुपम भक्ति को पाता है। श्री रघुवीर के पवित्र चरित्र को तुलसीदास रात-दिन गाता है।

दोहा :

कलिमल समन दमन मन राम सुजस सुखमूल।
सादर सुनहिं जे तिन्ह पर राम रहहिं अनुकूल॥6 क॥

श्री रामचन्द्रजी का सुंदर यश कलियुग के पापों का नाश करने वाला, मन को दमन करने वाला और सुख का मूल है, जो लोग इसे आदरपूर्वक सुनते हैं, उन पर श्री रामजी प्रसन्न रहते हैं॥6 (क)॥

सोरठा :

कठिन काल मल कोस धर्म न ग्यान न जोग जप।
परिहरि सकल भरोस रामहि भजहिं ते चतुर नर॥6 ख॥

यह कठिन कलि काल पापों का खजाना है, इसमें न धर्म है, न ज्ञान है और न योग तथा जप ही है। इसमें तो जो लोग सब भरोसों को छोड़कर श्री रामजी को ही भजते हैं, वे ही चतुर हैं॥6 (ख)॥

चौपाई :

मुनि पद कमल नाइ करि सीसा। चले बनहि सुर नर मुनि ईसा॥
आगें राम अनुज पुनि पाछें। मुनि बर बेष बने अति काछें॥1॥

मुनि के चरण कमलों में सिर नवाकर देवता, मनुष्य और मुनियों के स्वामी श्री रामजी वन को चले। आगे श्री रामजी हैं और उनके पीछे छोटे भाई लक्ष्मणजी हैं। दोनों ही मुनियों का सुंदर वेष बनाए अत्यन्त सुशोभित हैं॥1॥

उभय बीच श्री सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥
सरिता बन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहिं बर बाटा॥2॥

दोनों के बीच में श्री जानकीजी कैसी सुशोभित हैं, जैसे ब्रह्म और जीव के बीच माया हो। नदी, वन, पर्वत और दुर्गम घाटियाँ, सभी अपने स्वामी को पहचानकर सुंदर रास्ता दे देते हैं॥2॥

जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया॥
मिला असुर बिराध मग जाता। आवतहीं रघुबीर निपाता॥3॥

जहाँ-जहाँ देव श्री रघुनाथजी जाते हैं, वहाँ-वहाँ बादल आकाश में छाया करते जाते हैं। रास्ते में जाते हुए विराध राक्षस मिला। सामने आते ही श्री रघुनाथजी ने उसे मार डाला॥3॥

तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा। देखि दुखी निज धाम पठावा॥
पुनि आए जहँ मुनि सरभंगा। सुंदर अनुज जानकी संगा॥4॥

(श्री रामजी के हाथ से मरते ही) उसने तुरंत सुंदर (दिव्य) रूप प्राप्त कर लिया। दुःखी देखकर प्रभु ने उसे अपने परम धाम को भेज दिया। फिर वे सुंदर छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजी के साथ वहाँ आए जहाँ मुनि शरभंगजी थे॥4॥

दोहा :

देखि राम मुख पंकज मुनिबर लोचन भृंग।
सादर पान करत अति धन्य जन्म सरभंग॥7॥

श्री रामचन्द्रजी का मुखकमल देखकर मुनिश्रेष्ठ के नेत्र रूपी भौंरे अत्यन्त आदरपूर्वक उसका (मकरन्द रस) पान कर रहे हैं। शरभंगजी का जन्म धन्य है॥7॥

चौपाई :

कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला। संकर मानस राजमराला॥
जात रहेउँ बिरंचि के धामा। सुनेउँ श्रवन बन ऐहहिं रामा॥1॥

मुनि ने कहा- हे कृपालु रघुवीर! हे शंकरजी मन रूपी मानसरोवर के राजहंस! सुनिए, मैं ब्रह्मलोक को जा रहा था। (इतने में) कानों से सुना कि श्री रामजी वन में आवेंगे॥1॥

चितवत पंथ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती॥
नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥2॥

तब से मैं दिन-रात आपकी राह देखता रहा हूँ। अब (आज) प्रभु को देखकर मेरी छाती शीतल हो गई। हे नाथ! मैं सब साधनों से हीन हूँ। आपने अपना दीन सेवक जानकर मुझ पर कृपा की है॥2॥

सो कछु देव न मोहि निहोरा। निज पन राखेउ जन मन चोरा॥
तब लगि रहहु दीन हित लागी। जब लगि मिलौं तुम्हहि तनु त्यागी॥3॥

हे देव! यह कुछ मुझ पर आपका एहसान नहीं है। हे भक्त-मनचोर! ऐसा करके आपने अपने प्रण की ही रक्षा की है। अब इस दीन के कल्याण के लिए तब तक यहाँ ठहरिए, जब तक मैं शरीर छोड़कर आपसे (आपके धाम में न) मिलूँ॥3॥

जोग जग्य जप तप ब्रत कीन्हा। प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा॥
एहि बिधि सर रचि मुनि सरभंगा। बैठे हृदयँ छाड़ि सब संगा॥4॥

योग, यज्ञ, जप, तप जो कुछ व्रत आदि भी मुनि ने किया था, सब प्रभु को समर्पण करके बदले में भक्ति का वरदान ले लिया। इस प्रकार (दुर्लभ भक्ति प्राप्त करके फिर) चिता रचकर मुनि शरभंगजी हृदय से सब आसक्ति छोड़कर उस पर जा बैठे॥4॥

दोहा :

सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम।
मम हियँ बसहु निरंतर सगुनरूप श्री राम॥8॥

हे नीले मेघ के समान श्याम शरीर वाले सगुण रूप श्री रामजी! सीताजी और छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित प्रभु (आप) निरंतर मेरे हृदय में निवास कीजिए॥8॥

चौपाई :

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। राम कृपाँ बैकुंठ सिधारा॥
ताते मुनि हरि लीन न भयऊ। प्रथमहिं भेद भगति बर लयऊ॥1॥

ऐसा कहकर शरभंगजी ने योगाग्नि से अपने शरीर को जला डाला और श्री रामजी की कृपा से

वे वैकुंठ को चले गए। मुनि भगवान में लीन इसलिए नहीं हुए कि उन्होंने पहले ही भेद-भक्ति का वर ले लिया था॥1॥

रिषि निकाय मुनिबर गति देखी। सुखी भए निज हृदयँ बिसेषी॥
अस्तुति करहिं सकल मुनि बृंदा। जयति प्रनत हित करुना कंदा॥2॥

ऋषि समूह मुनि श्रेष्ठ शरभंगजी की यह (दुर्लभ) गति देखकर अपने हृदय में विशेष रूप से सुखी हुए। समस्त मुनिवृंद श्री रामजी की स्तुति कर रहे हैं (और कह रहे हैं) शरणागत हितकारी करुणा कन्द (करुणा के मूल) प्रभु की जय हो!॥2॥

पुनि रघुनाथ चले बन आगे। मुनिबर बृंद बिपुल सँग लागे॥
अस्थि समूह देखि रघुराया। पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया॥3॥

फिर श्री रघुनाथजी आगे वन में चले। श्रेष्ठ मुनियों के बहुत से समूह उनके साथ हो लिए। हड्डियों का ढेर देखकर श्री रघुनाथजी को बड़ी दया आई, उन्होंने मुनियों से पूछा॥3॥

जानतहूँ पूछिअ कस स्वामी। सबदरसी तुम्ह अंतरजामी॥
निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुबीर नयन जल छाए॥4॥

(मुनियों ने कहा) हे स्वामी! आप सर्वदर्शी (सर्वज्ञ) और अंतर्यामी (सबके हृदय की जानने वाले) हैं। जानते हुए भी (अनजान की तरह) हमसे कैसे पूछ रहे हैं? राक्षसों के दलों ने सब मुनियों को खा डाला है। (ये सब उन्हीं की हड्डियों के ढेर हैं)। यह सुनते ही श्री रघुवीर के नेत्रों में जल छा गया (उनकी आँखों में करुणा के आँसू भर आए)॥4॥

दोहा :

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥9॥

श्री रामजी ने भुजा उठाकर प्रण किया कि मैं पृथ्वी को राक्षसों से रहित कर दूँगा। फिर समस्त मुनियों के आश्रमों में जा-जाकर उनको (दर्शन एवं सम्भाषण का) सुख दिया॥9॥

चौपाई :

मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना। नाम सुतीछन रति भगवाना॥
मन क्रम बचन राम पद सेवक। सपनेहुँ आन भरोस न देवक॥1॥

मुनि अगस्त्यजी के एक सुतीक्ष्ण नामक सुजान (ज्ञानी) शिष्य थे, उनकी भगवान में प्रीति थी। वे मन, वचन और कर्म से श्री रामजी के चरणों के सेवक थे। उन्हें स्वप्न में भी किसी दूसरे देवता का भरोसा नहीं था॥1॥

प्रभु आगवनु श्रवन सुनि पावा। करत मनोरथ आतुर धावा॥

हे बिधि दीनबंधु रघुराया। मो से सठ पर करिहहिं दाया॥2॥

उन्होंने ज्यों ही प्रभु का आगमन कानों से सुन पाया, त्यों ही अनेक प्रकार के मनोरथ करते हुए वे आतुरता (शीघ्रता) से दौड़ चले। हे विधाता! क्या दीनबन्धु श्री रघुनाथजी मुझ जैसे दुष्ट पर भी दया करेंगे?॥2॥

सहित अनुज मोहि राम गोसाईं। मिलिहहिं निज सेवक की नाईं॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ नाहीं। भगति बिरति न ग्यान मन माहीं॥3॥

क्या स्वामी श्री रामजी छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित मुझसे अपने सेवक की तरह मिलेंगे? मेरे हृदय में दृढ़ विश्वास नहीं होता, क्योंकि मेरे मन में भक्ति, वैराग्य या ज्ञान कुछ भी नहीं है॥3॥

नहिं सतसंग जोग जप जागा। नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा॥
एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाकें गति न आन की॥4॥

मैंने न तो सत्संग, योग, जप अथवा यज्ञ ही किए हैं और न प्रभु के चरणकमलों में मेरा दृढ़ अनुराग ही है। हाँ, दया के भंडार प्रभु की एक बान है कि जिसे किसी दूसरे का सहारा नहीं है, वह उन्हें प्रिय होता है॥4॥

होइहैं सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पंकज भव मोचन॥
निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी॥5॥

(भगवान की इस बान का स्मरण आते ही मुनि आनंदमग्न होकर मन ही मन कहने लगे-) अहा! भव बंधन से छुड़ाने वाले प्रभु के मुखारविंद को देखकर आज मेरे नेत्र सफल होंगे। (शिवजी कहते हैं-) हे भवानी! ज्ञानी मुनि प्रेम में पूर्ण रूप से निमग्न हैं। उनकी वह दशा कही नहीं जाती॥5॥

दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा॥
कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई॥6॥

उन्हें दिशा-विदिशा (दिशाएँ और उनके कोण आदि) और रास्ता, कुछ भी नहीं सूझ रहा है। मैं कौन हूँ और कहाँ जा रहा हूँ, यह भी नहीं जानते (इसका भी ज्ञान नहीं है)। वे कभी पीछे घूमकर फिर आगे चलने लगते हैं और कभी (प्रभु के) गुण गा-गाकर नाचने लगते हैं॥6॥

अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखैं तरु ओट लुकाई॥
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदयँ हरन भव भीरा॥7॥

मुनि ने प्रगाढ़ प्रेमाभक्ति प्राप्त कर ली। प्रभु श्री रामजी वृक्ष की आड़ में छिपकर (भक्त की प्रेमोन्मत्त दशा) देख रहे हैं। मुनि का अत्यन्त प्रेम देखकर भवभय (आवागमन के भय) को हरने वाले श्री रघुनाथजी मुनि के हृदय में प्रकट हो गए॥7॥

मुनि मग माझ अचल होइ बैसा। पुलक सरीर पनस फल जैसा॥
तब रघुनाथ निकट चलि आए। देखि दसा निज जन मन भाए॥8॥

(हृदय में प्रभु के दर्शन पाकर) मुनि बीच रास्ते में अचल (स्थिर) होकर बैठ गए। उनका शरीर रोमांच से कटहल के फल के समान (कण्टकित) हो गया। तब श्री रघुनाथजी उनके पास चले आए और अपने भक्त की प्रेम दशा देखकर मन में बहुत प्रसन्न हुए॥8॥

मुनिहि राम बहु भाँति जगावा। जाग न ध्यान जनित सुख पावा॥
भूप रूप तब राम दुरावा। हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा॥9॥

श्री रामजी ने मुनि को बहुत प्रकार से जगाया, पर मुनि नहीं जागे, क्योंकि उन्हें प्रभु के ध्यान का सुख प्राप्त हो रहा था। तब श्री रामजी ने अपने राजरूप को छिपा लिया और उनके हृदय में अपना चतुर्भुज रूप प्रकट किया॥9॥

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें। बिकल हीन मनि फनिबर जैसें॥
आगें देखि राम तन स्यामा। सीता अनुज सहित सुख धामा॥10॥

तब (अपने ईष्ट स्वरूप के अंतर्धान होते ही) मुनि ऐसे व्याकुल होकर उठे, जैसे श्रेष्ठ (मणिधर) सर्प मणि के बिना व्याकुल हो जाता है। मुनि ने अपने सामने सीताजी और लक्ष्मणजी सहित श्यामसुंदर विग्रह सुखधाम श्री रामजी को देखा॥10॥

परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी। प्रेम मगन मुनिबर बड़भागी॥
भुज बिसाल गहि लिए उठाई। परम प्रीति राखे उर लाई॥11॥

प्रेम में मग्न हुए वे बड़भागी श्रेष्ठ मुनि लाठी की तरह गिरकर श्री रामजी के चरणों में लग गए। श्री रामजी ने अपनी विशाल भुजाओं से पकड़कर उन्हें उठा लिया और बड़े प्रेम से हृदय से लगा रखा॥11॥

मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला। कनक तरुहि जनु भेंट तमाला॥
राम बदनु बिलोक मुनि ठाढ़ा। मानहुँ चित्र माझ लिखि काढ़ा॥12॥

कृपालु श्री रामचन्द्रजी मुनि से मिलते हुए ऐसे शोभित हो रहे हैं, मानो सोने के वृक्ष से तमाल का वृक्ष गले लगकर मिल रहा हो। मुनि (निस्तब्ध) खड़े हुए (टकटकी लगाकर) श्री रामजी का मुख देख रहे हैं, मानो चित्र में लिखकर बनाए गए हों॥12॥

दोहा :

तब मुनि हृदयँ धीर धरि गहि पद बारहिं बार।
निज आश्रम प्रभु आनि करि पूजा बिबिध प्रकार॥10॥

तब मुनि ने हृदय में धीरज धरकर बार-बार चरणों को स्पर्श किया। फिर प्रभु को अपने आश्रम

में लाकर अनेक प्रकार से उनकी पूजा की॥10॥

चौपाई :

कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी। अस्तुति करौं कवन बिधि तोरी॥
महिमा अमित मोरि मति थोरी। रबि सन्मुख खद्योत अँजोरी॥1॥

मुनि कहने लगे- हे प्रभो! मेरी विनती सुनिए। मैं किस प्रकार से आपकी स्तुति करूँ? आपकी महिमा अपार है और मेरी बुद्धि अल्प है। जैसे सूर्य के सामने जुगनू का उजाला!॥1॥

श्याम तामरस दाम शरीरं। जटा मुकुट परिधन मुनिचीरं॥
पाणि चाप शर कटि तूणीरं। नौमि निरंतर श्रीरघुवीरं॥2॥

हे नीलकमल की माला के समान श्याम शरीर वाले! हे जटाओं का मुकुट और मुनियों के (वल्कल) वस्त्र पहने हुए, हाथों में धनुष-बाण लिए तथा कमर में तरकस कसे हुए श्री रामजी! मैं आपको निरंतर नमस्कार करता हूँ॥2॥

मोह विपिन घन दहन कृशानुः। संत सरोरुह कानन भानुः॥
निसिचर करि वरूथ मृगराजः। त्रास सदा नो भव खग बाजः॥3॥

जो मोह रूपी घने वन को जलाने के लिए अग्नि हैं, संत रूपी कमलों के वन को प्रफुल्लित करने के लिए सूर्य हैं, राक्षस रूपी हाथियों के समूह को पछाड़ने के लिए सिंह हैं और भव (आवागमन) रूपी पक्षी को मारने के लिए बाज रूप हैं, वे प्रभु सदा हमारी रक्षा करें॥3॥

अरुण नयन राजीव सुवेशं। सीता नयन चकोर निशेशं॥
हर हृदि मानस बाल मरालं। नौमि राम उर बाहु विशालं॥4॥

हे लाल कमल के समान नेत्र और सुंदर वेश वाले! सीताजी के नेत्र रूपी चकोर के चंद्रमा, शिवजी के हृदय रूपी मानसरोवर के बालहंस, विशाल हृदय और भुजा वाले श्री रामचंद्रजी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ॥4॥

संशय सर्प ग्रसन उरगादः। शमन सुकर्कश तर्क विषादः॥
भव भंजन रंजन सुर यूथः। त्रातु सदा नो कृपा वरूथः॥5॥

जो संशय रूपी सर्प को ग्रसने के लिए गरुड़ हैं, अत्यंत कठोर तर्क से उत्पन्न होने वाले विषाद का नाश करने वाले हैं, आवागमन को मिटाने वाले और देवताओं के समूह को आनंद देने वाले हैं, वे कृपा के समूह श्री रामजी सदा हमारी रक्षा करें॥5॥

निर्गुण सगुण विषम सम रूपं। ज्ञान गिरा गोतीतमनूपं॥
अमलमखिलमनवद्यमपारं। नौमि राम भंजन महि भारं॥6॥

हे निर्गुण, सगुण, विषम और समरूप! हे ज्ञान, वाणी और इंद्रियों से अतीत! हे अनुपम, निर्मल,

संपूर्ण दोषरहित, अनंत एवं पृथ्वी का भार उतारने वाले श्री रामचंद्रजी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ॥6॥

भक्त कल्पपादप आरामः। तर्जन क्रोध लोभ मद कामः॥
अति नागर भव सागर सेतुः। त्रातु सदा दिनकर कुल केतुः॥7॥

जो भक्तों के लिए कल्पवृक्ष के बगीचे हैं, क्रोध, लोभ, मद और काम को डराने वाले हैं, अत्यंत ही चतुर और संसार रूपी समुद्र से तरने के लिए सेतु रूप हैं, वे सूर्यकुल की ध्वजा श्री रामजी सदा मेरी रक्षा करें॥7॥

अतुलित भुज प्रताप बल धामः। कलि मल विपुल विभंजन नामः॥
धर्म वर्म नर्मद गुण ग्रामः। संतत शं तनोतु मम रामः॥8॥

जिनकी भुजाओं का प्रताप अतुलनीय है, जो बल के धाम हैं, जिनका नाम कलियुग के बड़े भारी पापों का नाश करने वाला है, जो धर्म के कवच (रक्षक) हैं और जिनके गुण समूह आनंद देने वाले हैं, वे श्री रामजी निरंतर मेरे कल्याण का विस्तार करें॥8॥

जदपि बिरज ब्यापक अबिनासी। सब के हृदयँ निरंतर बासी॥
तदपि अनुज श्री सहित खरारी। बसतु मनसि मम काननचारी॥9॥

यद्यपि आप निर्मल, व्यापक, अविनाशी और सबके हृदय में निरंतर निवास करने वाले हैं, तथापि हे खरारि श्री रामजी! लक्ष्मणजी और सीताजी सहित वन में विचरने वाले आप इसी रूप में मेरे हृदय में निवास कीजिए॥9॥

जे जानहिं ते जानहुँ स्वामी। सगुन अगुन उर अंतरजामी॥
जो कोसलपति राजिव नयना। करउ सो राम हृदय मम अयना॥10॥

हे स्वामी! आपको जो सगुण, निर्गुण और अंतर्यामी जानते हों, वे जाना करें, मेरे हृदय में तो कोसलपति कमलनयन श्री रामजी ही अपना घर बनावें॥10॥

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥
सुनि मुनि बचन राम मन भाए। बहुरि हरषि मुनिबर उर लाए॥11॥

ऐसा अभिमान भूलकर भी न छूटे कि मैं सेवक हूँ और श्री रघुनाथजी मेरे स्वामी हैं। मुनि के वचन सुनकर श्री रामजी मन में बहुत प्रसन्न हुए। तब उन्होंने हर्षित होकर श्रेष्ठ मुनि को हृदय से लगा लिया॥11॥

परम प्रसन्न जानु मुनि मोही। जो बर मागहु देउँ सो तोही॥
मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाचा। समुझि न परइ झूठ का साचा॥12॥

(और कहा-) हे मुनि! मुझे परम प्रसन्न जानो। जो वर माँगो, वही मैं तुम्हें दूँ! मुनि सुतीक्ष्णजी ने

कहा- मैंने तो वर कभी माँगा ही नहीं। मुझे समझ ही नहीं पड़ता कि क्या झूठ है और क्या सत्य है, (क्या माँगू, क्या नहीं)॥12॥

तुम्हहि नीक लागै रघुराई। सो मोहि देहु दास सुखदाई॥
अबिरल भगति बिरति बिग्याना। होहु सकल गुन ग्यान निधाना॥13॥

((अतः) हे रघुनाथजी! हे दासों को सुख देने वाले! आपको जो अच्छा लगे, मुझे वही दीजिए। (श्री रामचंद्रजी ने कहा- हे मुने!) तुम प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य, विज्ञान और समस्त गुणों तथा ज्ञान के निधान हो जाओ॥13॥

प्रभु जो दीन्ह सो बरु मैं पावा। अब सो देहु मोहि जो भावा॥14॥

(तब मुनि बोले-) प्रभु ने जो वरदान दिया, वह तो मैंने पा लिया। अब मुझे जो अच्छा लगता है, वह दीजिए॥14॥

दोहा :

अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम।
मन हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम॥11॥

हे प्रभो! हे श्री रामजी! छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजी सहित धनुष-बाणधारी आप निष्काम (स्थिर) होकर मेरे हृदय रूपी आकाश में चंद्रमा की भाँति सदा निवास कीजिए॥11॥

चौपाई :

एवमस्तु करि रमानिवासा। हरषि चले कुंभज रिषि पासा॥
बहुत दिवस गुर दरसनु पाएँ। भए मोहि एहिं आश्रम आएँ॥1॥

'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) ऐसा उच्चारण कर लक्ष्मी निवास श्री रामचंद्रजी हर्षित होकर अगस्त्य ऋषि के पास चले। (तब सुतीक्ष्णजी बोले-) गुरु अगस्त्यजी का दर्शन पाए और इस आश्रम में आए मुझे बहुत दिन हो गए॥1॥

अब प्रभु संग जाउँ गुर पाहीं। तुम्ह कहँ नाथ निहोरा नाहीं॥
देखि कृपानिधि मुनि चतुराई। लिए संग बिहसे द्वौ भाई॥2॥

अब मैं भी प्रभु (आप) के साथ गुरुजी के पास चलता हूँ। इसमें हे नाथ! आप पर मेरा कोई एहसान नहीं है। मुनि की चतुरता देखकर कृपा के भंडार श्री रामजी ने उनको साथ ले लिया और दोनो भाई हँसने लगे॥2॥

पंथ कहत निज भगति अनूपा। मुनि आश्रम पहुँचे सुरभूपा॥
तुरत सुतीछन गुर पहिं गयऊ। करि दंडवत कहत अस भयऊ॥3॥

रास्ते में अपनी अनुपम भक्ति का वर्णन करते हुए देवताओं के राजराजेश्वर श्री रामजी अगस्त्य

मुनि के आश्रम पर पहुँचे। सुतीक्ष्ण तुरंत ही गुरु अगस्त्य के पास गए और दण्डवत् करके ऐसा कहने लगे॥3॥

नाथ कोसलाधीस कुमारा। आए मिलन जगत आधारा॥
राम अनुज समेत बैदेही। निसि दिनु देव जपत हहु जेही॥4॥

हे नाथ! अयोध्या के राजा दशरथजी के कुमार जगदाधार श्री रामचंद्रजी छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजी सहित आपसे मिलने आए हैं, जिनका हे देव! आप रात-दिन जप करते रहते हैं॥4॥

सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए। हरि बिलोकि लोचन जल छाए॥
मुनि पद कमल परे द्वौ भाई। रिषि अति प्रीति लिए उर लाई॥5॥

यह सुनते ही अगस्त्यजी तुरंत ही उठ दौड़े। भगवान् को देखते ही उनके नेत्रों में (आनंद और प्रेम के आँसुओं का) जल भर आया। दोनों भाई मुनि के चरण कमलों पर गिर पड़े। ऋषि ने (उठाकर) बड़े प्रेम से उन्हें हृदय से लगा लिया॥5॥

सादर कुसल पूछि मुनि ग्यानी। आसन बर बैठारे आनी॥
पुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा। मोहि सम भाग्यवंत नहिं दूजा॥6॥

ज्ञानी मुनि ने आदरपूर्वक कुशल पूछकर उनको लाकर श्रेष्ठ आसन पर बैठाया। फिर बहुत प्रकार से प्रभु की पूजा करके कहा- मेरे समान भाग्यवान् आज दूसरा कोई नहीं है॥6॥

जहँ लगि रहे अपर मुनि बृंदा। हरषे सब बिलोकि सुखकंदा॥7॥

वहाँ जहाँ तक (जितने भी) अन्य मुनिगण थे, सभी आनंदकन्द श्री रामजी के दर्शन करके हर्षित हो गए॥7॥

दोहा :

मुनि समूह महँ बैठे सन्मुख सब की ओर।
सरद इंदु तन चितवन मानहुँ निकर चकोर॥12॥

मुनियों के समूह में श्री रामचंद्रजी सबकी ओर सम्मुख होकर बैठे हैं (अर्थात् प्रत्येक मुनि को श्री रामजी अपने ही सामने मुख करके बैठे दिखाई देते हैं और सब मुनि टकटकी लगाए उनके मुख को देख रहे हैं)। ऐसा जान पड़ता है मानो चकोरों का समुदाय शरत्पूर्णिमा के चंद्रमा की ओर देख रहा है॥12॥

चौपाई :

तब रघुबीर कहा मुनि पाहीं। तुम्ह सन प्रभु दुराव कछु नाहीं॥
तुम्ह जानहु जेहि कारन आयउँ। ताते तात न कहि समुझायउँ॥1॥

तब श्री रामजी ने मुनि से कहा- हे प्रभो! आप से तो कुछ छिपाव है नहीं। मैं जिस कारण से

आया हूँ, वह आप जानते ही हैं। इसी से हे तात! मैंने आपसे समझाकर कुछ नहीं कहा॥1॥

अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौं मुनिद्रोही॥
मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी। पूछेहु नाथ मोहि का जानी॥2॥

हे प्रभो! अब आप मुझे वही मंत्र (सलाह) दीजिए, जिस प्रकार मैं मुनियों के द्रोही राक्षसों को मारूँ। प्रभु की वाणी सुनकर मुनि मुस्कुराए और बोले- हे नाथ! आपने क्या समझकर मुझसे यह प्रश्न किया?॥2॥

तुम्हरेइँ भजन प्रभाव अघारी। जानउँ महिमा कछुक तुम्हारी॥
ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया॥3॥

हे पापों का नाश करने वाले! मैं तो आप ही के भजन के प्रभाव से आपकी कुछ थोड़ी सी महिमा जानता हूँ। आपकी माया गूलर के विशाल वृक्ष के समान है, अनेकों ब्रह्मांडों के समूह ही जिसके फल हैं॥3॥

जीव चराचर जंतु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना॥
ते फल भच्छक कठिन कराला। तव भयँ डरत सदा सोउ काला॥4॥

चर और अचर जीव (गूलर के फल के भीतर रहने वाले छोटे-छोटे) जंतुओं के समान उन (ब्रह्माण्ड रूपी फलों) के भीतर बसते हैं और वे (अपने उस छोटे से जगत्‌ के सिवा) दूसरा कुछ नहीं जानते। उन फलों का भक्षण करने वाला कठिन और कराल काल है। वह काल भी सदा आपसे भयभीत रहता है॥4॥

ते तुम्ह सकल लोकपति साईं। पूँछेहु मोहि मनुज की नाईं॥
यह बर मागउँ कृपानिकेता। बसहु हृदयँ श्री अनुज समेता॥5॥

उन्हीं आपने समस्त लोकपालों के स्वामी होकर भी मुझसे मनुष्य की तरह प्रश्न किया। हे कृपा के धाम! मैं तो यह वर माँगता हूँ कि आप श्री सीताजी और छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित मेरे हृदय में (सदा) निवास कीजिए॥5॥

अबिरल भगति बिरति सतसंगा। चरन सरोरुह प्रीति अभंगा॥
जद्यपि ब्रह्म अखंड अनंता। अनुभव गम्य भजहिं जेहि संता।6॥

मुझे प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य, सत्संग और आपके चरणकमलों में अटूट प्रेम प्राप्त हो। यद्यपि आप अखंड और अनंत ब्रह्म हैं, जो अनुभव से ही जानने में आते हैं और जिनका संतजन भजन करते हैं॥6॥

अस तव रूप बखानउँ जानउँ। फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानउँ॥
संतत दासन्ह देहु बड़ाई। तातें मोहि पूँछेहु रघुराई॥7॥

यद्यपि मैं आपके ऐसे रूप को जानता हूँ और उसका वर्णन भी करता हूँ, तो भी लौट-लौटकर में सगुण ब्रह्म में (आपके इस सुंदर स्वरूप में) ही प्रेम मानता हूँ। आप सेवकों को सदा ही बड़ाई दिया करते हैं, इसी से हे रघुनाथजी! आपने मुझसे पूछा है॥7॥

है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचबटी तेहि नाऊँ॥
दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिबर कर हरहू॥8॥

हे प्रभो! एक परम मनोहर और पवित्र स्थान है, उसका नाम पंचवटी है। हे प्रभो! आप दण्डक वन को (जहाँ पंचवटी है) पवित्र कीजिए और श्रेष्ठ मुनि गौतमजी के कठोर शाप को हर लीजिए॥8॥

बास करहु तहँ रघुकुल राया। कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया॥
चले राम मुनि आयसु पाई। तुरतहिं पंचबटी निअराई॥9॥

हे रघुकुल के स्वामी! आप सब मुनियों पर दया करके वहीं निवास कीजिए। मुनि की आज्ञा पाकर श्री रामचंद्रजी वहाँ से चल दिए और शीघ्र ही पंचवटी के निकट पहुँच गए॥9॥

दोहा :

गीधराज सै भेंट भइ बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ।
गोदावरी निकट प्रभु रहे परन गृह छाइ॥13॥

वहाँ गृध्रराज जटायु से भेंट हुई। उसके साथ बहुत प्रकार से प्रेम बढ़ाकर प्रभु श्री रामचंद्रजी गोदावरीजी के समीप पर्णकुटी छाकर रहने लगे॥13॥

चौपाई :

जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भए मुनि बीती त्रासा॥
गिरि बन नदीं ताल छबि छाए। दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाए॥1॥

जब से श्री रामजी ने वहाँ निवास किया, तब से मुनि सुखी हो गए, उनका डर जाता रहा। पर्वत, वन, नदी और तालाब शोभा से छा गए। वे दिनोंदिन अधिक सुहावने (मालूम) होने लगे॥1॥

खग मृग बृंद अनंदित रहहीं। मधुप मधुर गुंजत छबि लहहीं॥
सो बन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रगट रघुबीर बिराजा॥2॥

पक्षी और पशुओं के समूह आनंदित रहते हैं और भौंरे मधुर गुंजार करते हुए शोभा पा रहे हैं। जहाँ प्रत्यक्ष श्री रामजी विराजमान हैं, उस वन का वर्णन सर्पराज शेषजी भी नहीं कर सकते॥2॥

एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे छलहीना॥
सुर नर मुनि सचराचर साईं। मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं॥3॥

एक बार प्रभु श्री रामजी सुख से बैठे हुए थे। उस समय लक्ष्मणजी ने उनसे छलरहित (सरल) वचन कहे- हे देवता, मनुष्य, मुनि और चराचर के स्वामी! मैं अपने प्रभु की तरह (अपना स्वामी

समझकर) आपसे पूछता हूँ॥3॥

मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा॥
कहहु ग्यान बिराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया॥4॥

हे देव! मुझे समझाकर वही कहिए, जिससे सब छोड़कर मैं आपकी चरणरज की ही सेवा करूँ। ज्ञान, वैराग्य और माया का वर्णन कीजिए और उस भक्ति को कहिए, जिसके कारण आप दया करते हैं॥4॥

दोहा :

ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ॥14॥

हे प्रभो! ईश्वर और जीव का भेद भी सब समझाकर कहिए, जिससे आपके चरणों में मेरी प्रीति हो और शोक, मोह तथा भ्रम नष्ट हो जाएँ॥14॥

चौपाई :

थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात मति मन चित लाई॥
मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥1॥

(श्री रामजी ने कहा-) हे तात! मैं थोड़े ही में सब समझाकर कहे देता हूँ। तुम मन, चित्त और बुद्धि लगाकर सुनो! मैं और मेरा, तू और तेरा- यही माया है, जिसने समस्त जीवों को वश में कर रखा है॥1॥

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिद्या अपर अबिद्या दोऊ॥2॥

इंद्रियों के विषयों को और जहाँ तक मन जाता है, हे भाई! उन सबको माया जानना। उसके भी एक विद्या और दूसरी अविद्या, इन दोनों भेदों को तुम सुनो-॥2॥

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा॥
एक रचइ जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें॥3॥

एक (अविद्या) दुष्ट (दोषयुक्त) है और अत्यंत दुःखरूप है, जिसके वश होकर जीव संसार रूपी कुएँ में पड़ा हुआ है और एक (विद्या) जिसके वश में गुण है और जो जगत् की रचना करती है, वह प्रभु से ही प्रेरित होती है, उसके अपना बल कुछ भी नही है॥3॥

ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं॥
कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी॥4॥

ज्ञान वह है, जहाँ (जिसमें) मान आदि एक भी (दोष) नहीं है और जो सबसे समान रूप से ब्रह्म

को देखता है। हे तात! उसी को परम वैराग्यवान् कहना चाहिए, जो सारी सिद्धियों को और तीनों गुणों को तिनके के समान त्याग चुका हो॥4॥

(जिसमें मान, दम्भ, हिंसा, क्षमाराहित्य, टेढ़ापन, आचार्य सेवा का अभाव, अपवित्रता, अस्थिरता, मन का निगृहीत न होना, इंद्रियों के विषय में आसक्ति, अहंकार, जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिमय जगत् में सुख-बुद्धि, स्त्री-पुत्र-घर आदि में आसक्ति तथा ममता, इष्ट और अनिष्ट की प्राप्ति में हर्ष-शोक, भक्ति का अभाव, एकान्त में मन न लगना, विषयी मनुष्यों के संग में प्रेम- ये अठारह न हों और नित्य अध्यात्म (आत्मा) में स्थिति तथा तत्त्व ज्ञान के अर्थ (तत्त्वज्ञान के द्वारा जानने योग्य) परमात्मा का नित्य दर्शन हो, वही ज्ञान कहलाता है। देखिए गीता अध्याय 13 श्लोक 7 से 11)

दोहा :

माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छ प्रद सर्बपर माया प्रेरक सीव॥15॥

जो माया को, ईश्वर को और अपने स्वरूप को नहीं जानता, उसे जीव कहना चाहिए। जो (कर्मानुसार) बंधन और मोक्ष देने वाला, सबसे परे और माया का प्रेरक है, वह ईश्वर है॥15॥

चौपाई

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥
जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥1॥

धर्म (के आचरण) से वैराग्य और योग से ज्ञान होता है तथा ज्ञान मोक्ष का देने वाला है- ऐसा वेदों ने वर्णन किया है। और हे भाई! जिससे मैं शीघ्र ही प्रसन्न होता हूँ, वह मेरी भक्ति है जो भक्तों को सुख देने वाली है॥1॥

सो सुतंत्र अवलंब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना॥
भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो संत होइँ अनुकूला॥2॥

वह भक्ति स्वतंत्र है, उसको (ज्ञान-विज्ञान आदि किसी) दूसरे साधन का सहारा (अपेक्षा) नहीं है। ज्ञान और विज्ञान तो उसके अधीन हैं। हे तात! भक्ति अनुपम एवं सुख की मूल है और वह तभी मिलती है, जब संत अनुकूल (प्रसन्न) होते हैं॥2॥

भगति कि साधन कहउँ बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी॥
प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती॥3॥

अब मैं भक्ति के साधन विस्तार से कहता हूँ- यह सुगम मार्ग है, जिससे जीव मुझको सहज ही पा जाते हैं। पहले तो ब्राह्मणों के चरणों में अत्यंत प्रीति हो और वेद की रीति के अनुसार अपने-अपने (वर्णाश्रम के) कर्मों में लगा रहे॥3॥

एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा॥
श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं॥4॥

इसका फल, फिर विषयों से वैराग्य होगा। तब (वैराग्य होने पर) मेरे धर्म (भागवत धर्म) में प्रेम उत्पन्न होगा। तब श्रवण आदि नौ प्रकार की भक्तियाँ दृढ़ होंगी और मन में मेरी लीलाओं के प्रति अत्यंत प्रेम होगा॥4॥

संत चरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा॥5॥

जिसका संतों के चरणकमलों में अत्यंत प्रेम हो, मन, वचन और कर्म से भजन का दृढ़ नियम हो और जो मुझको ही गुरु, पिता, माता, भाई, पति और देवता सब कुछ जाने और सेवा में दृढ़ हो,॥5॥

मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दंभ न जाकें। तात निरंतर बस मैं ताकें॥6॥

मेरा गुण गाते समय जिसका शरीर पुलकित हो जाए, वाणी गदगद हो जाए और नेत्रों से (प्रेमाश्रुओं का) जल बहने लगे और काम, मद और दम्भ आदि जिसमें न हों, हे भाई! मैं सदा उसके वश में रहता हूँ॥6॥

दोहा :

बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम॥16॥

जिनको कर्म, वचन और मन से मेरी ही गति है और जो निष्काम भाव से मेरा भजन करते हैं, उनके हृदय कमल में मैं सदा विश्राम किया करता हूँ॥16॥

चौपाई :

भगति जोग सुनि अति सुख पावा। लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा॥
एहि बिधि कछुक दिन बीती। कहत बिराग ग्यान गुन नीती॥1॥

इस भक्ति योग को सुनकर लक्ष्मणजी ने अत्यंत सुख पाया और उन्होंने प्रभु श्री रामचंद्रजी के चरणों में सिर नवाया। इस प्रकार वैराग्य, ज्ञान, गुण और नीति कहते हुए कुछ दिन बीत गए॥1॥

सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी॥
पंचबटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा॥2॥

शूर्पणखा नामक रावण की एक बहिन थी, जो नागिन के समान भयानक और दुष्ट हृदय की थी।

वह एक बार पंचवटी में गई और दोनों राजकुमारों को देखकर विकल (काम से पीड़ित) हो गई॥2॥

भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी॥
होइ बिकल सक मनहि न रोकी। जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी॥3॥

(काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) हे गरुड़जी! (शूर्पणखा- जैसी राक्षसी, धर्मज्ञान शून्य कामान्ध) स्त्री मनोहर पुरुष को देखकर, चाहे वह भाई, पिता, पुत्र ही हो, विकल हो जाती है और मन को नहीं रोक सकती। जैसे सूर्यकान्तमणि सूर्य को देखकर द्रवित हो जाती है (ज्वाला से पिघल जाती है)॥3॥

रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई॥
तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी। यह सँजोग बिधि रचा बिचारी॥4॥

वह सुन्दर रूप धरकर प्रभु के पास जाकर और बहुत मुस्कुराकर वचन बोली- न तो तुम्हारे समान कोई पुरुष है, न मेरे समान स्त्री। विधाता ने यह संयोग (जोड़ा) बहुत विचार कर रचा है॥4॥

मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउँ खोजि लोक तिहु नाहीं॥
तातें अब लगि रहिउँ कुमारी। मनु माना कछु तुम्हहि निहारी॥5॥

मेरे योग्य पुरुष (वर) जगत्‌भर में नहीं है, मैंने तीनों लोकों को खोज देखा। इसी से मैं अब तक कुमारी (अविवाहित) रही। अब तुमको देखकर कुछ मन माना (चित्त ठहरा) है॥5॥

सीतहि चितइ कही प्रभु बाता। अहइ कुआर मोर लघु भ्राता॥
गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी। प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी॥6॥

सीताजी की ओर देखकर प्रभु श्री रामजी ने यह बात कही कि मेरा छोटा भाई कुमार है। तब वह लक्ष्मणजी के पास गई। लक्ष्मणजी ने उसे शत्रु की बहिन समझकर और प्रभु की ओर देखकर कोमल वाणी से बोले-॥6॥

सुंदरि सुनु मैं उन्ह कर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा॥
प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा। जो कछु करहिं उनहि सब छाजा॥7॥

हे सुंदरी! सुन, मैं तो उनका दास हूँ। मैं पराधीन हूँ, अतः तुम्हे सुभीता (सुख) न होगा। प्रभु समर्थ हैं, कोसलपुर के राजा है, वे जो कुछ करें, उन्हें सब फबता है॥7॥

सेवक सुख चह मान भिखारी। ब्यसनी धन सुभ गति बिभिचारी॥
लोभी जसु चह चार गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी॥8॥

सेवक सुख चाहे, भिखारी सम्मान चाहे, व्यसनी (जिसे जुए, शराब आदि का व्यसन हो) धन और

व्यभिचारी शुभ गति चाहे, लोभी यश चाहे और अभिमानी चारों फल- अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चाहे, तो ये सब प्राणी आकाश को दुहकर दूध लेना चाहते हैं (अर्थात्‌ असंभव बात को संभव करना चाहते हैं)॥8॥

पुनि फिरि राम निकट सो आई। प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई॥
लछिमन कहा तोहि सो बरई। जो तृन तोरि लाज परिहरई॥9॥

वह लौटकर फिर श्री रामजी के पास आई, प्रभु ने उसे फिर लक्ष्मणजी के पास भेज दिया। लक्ष्मणजी ने कहा- तुम्हें वही वरेगा, जो लज्जा को तृण तोड़कर (अर्थात्‌ प्रतिज्ञा करके) त्याग देगा (अर्थात्‌ जो निपट निर्लज्ज होगा)॥9॥

तब खिसिआनि राम पहिं गई। रूप भयंकर प्रगटत भई॥
सीतहि सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सयन बुझाई॥10॥

तब वह खिसियायी हुई (क्रुद्ध होकर) श्री रामजी के पास गई और उसने अपना भयंकर रूप प्रकट किया। सीताजी को भयभीत देखकर श्री रघुनाथजी ने लक्ष्मण को इशारा देकर कहा॥10॥

दोहा :

लछिमन अति लाघवँ सो नाक कान बिनु कीन्हि।
ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्हि॥17॥

लक्ष्मणजी ने बड़ी फुर्ती से उसको बिना नाक-कान की कर दिया। मानो उसके हाथ रावण को चुनौती दी हो!॥17॥

चौपाई :

नाक कान बिनु भइ बिकरारा। जनु स्रव सैल गेरु कै धारा॥
खर दूषन पहिं गइ बिलपाता। धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता॥1॥

बिना नाक-कान के वह विकराल हो गई। (उसके शरीर से रक्त इस प्रकार बहने लगा) मानो (काले) पर्वत से गेरू की धारा बह रही हो। वह विलाप करती हुई खर-दूषण के पास गई (और बोली-) हे भाई! तुम्हारे पौरुष (वीरता) को धिक्कार है, तुम्हारे बल को धिक्कार है॥1॥

तेहिं पूछा सब कहेसि बुझाई। जातुधान सुनि सेन बनाई॥
धाए निसिचर निकर बरूथा। जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा॥2॥

उन्होंने पूछा, तब शूर्पणखा ने सब समझाकर कहा। सब सुनकर राक्षसों ने सेना तैयार की। राक्षस समूह झुंड के झुंड दौड़े। मानो पंखधारी काजल के पर्वतों का झुंड हो॥2॥

नाना बाहन नानाकारा। नानायुध धर घोर अपारा॥
सूपनखा आगें करि लीनी। असुभ रूप श्रुति नासा हीनी॥3॥

वे अनेकों प्रकार की सवारियों पर चढ़े हुए तथा अनेकों आकार (सूरतों) के हैं। वे अपार हैं और अनेकों प्रकार के असंख्य भयानक हथियार धारण किए हुए हैं। उन्होंने नाक-कान कटी हुई अमंगलरूपिणी शूर्पणखा को आगे कर लिया॥3॥

असगुन अमित होहिं भयकारी। गनहिं न मृत्यु बिबस सब झारी॥
गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाहीं। देखि कटकु भट अति हरषाहीं॥4॥

अनगिनत भयंकर अशकुन हो रहे हैं, परंतु मृत्यु के वश होने के कारण वे सब के सब उनको कुछ गिनते ही नहीं। गरजते हैं, ललकारते हैं और आकाश में उड़ते हैं। सेना देखकर योद्धा लोग बहुत ही हर्षित होते हैं॥4॥

कोउ कह जिअत धरहु द्वौ भाई। धरि मारहु तिय लेहु छड़ाई॥
धूरि पूरि नभ मंडल रहा। राम बोलाइ अनुज सन कहा॥5॥

कोई कहता है दोनों भाइयों को जीता ही पकड़ लो, पकड़कर मार डालो और स्त्री को छीन लो। आकाशमण्डल धूल से भर गया। तब श्री रामजी ने लक्ष्मणजी को बुलाकर उनसे कहा॥5॥

लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर। आवा निसिचर कटकु भयंकर॥
रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी। चले सहित श्री सर धनु पानी॥6॥

राक्षसों की भयानक सेना आ गई है। जानकीजी को लेकर तुम पर्वत की कंदरा में चले जाओ। सावधान रहना। प्रभु श्री रामचंद्रजी के वचन सुनकर लक्ष्मणजी हाथ में धनुष-बाण लिए श्री सीताजी सहित चले॥6॥

देखि राम रिपुदल चलि आवा।
बिहसि कठिन कोदंड चढ़ावा॥7॥

शत्रुओं की सेना (समीप) चली आई है, यह देखकर श्री रामजी ने हँसकर कठिन धनुष को चढ़ाया॥7॥

छंद :

कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जट जूट बाँधत सोह क्यों।
मरकत सयल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों॥
कटि कसि निषंग बिसाल भुज गहि चाप बिसिख सुधारि कै।
चितवत मनहुँ मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारि कै॥

कठिन धनुष चढ़ाकर सिर पर जटा का ज़ूड़ा बाँधते हुए प्रभु कैसे शोभित हो रहे हैं, जैसे मरकतमणि (पन्ने) के पर्वत पर करोड़ों बिजलियों से दो साँप लड़ रहे हों। कमर में तरकस कसकर, विशाल भुजाओं में धनुष लेकर और बाण सुधारकर प्रभु श्री रामचंद्रजी राक्षसों की ओर

देख रहे हैं। मानों मतवाले हाथियों के समूह को (आता) देखकर सिंह (उनकी ओर) ताक रहा हो।

सोरठा :

आइ गए बगमेल धरहु धरहु धावत सुभट।
जथा बिलोकि अकेल बाल रबिहि घेरत दनुज॥18॥

'पकड़ो-पकड़ो' पुकारते हुए राक्षस योद्धा बाग छोड़कर (बड़ी तेजी से) दौड़े हुए आए (और उन्होंने श्री रामजी को चारों ओर से घेर लिया), जैसे बालसूर्य (उदयकालीन सूर्य) को अकेला देखकर मन्देह नामक दैत्य घेर लेते हैं॥18॥

चौपाई :

प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। थकित भई रजनीचर धारी॥
सचिव बोलि बोले खर दूषन। यह कोउ नृपबालक नर भूषन॥1॥

(सौंदर्य-माधुर्यनिधि) प्रभु श्री रामजी को देखकर राक्षसों की सेना थकित रह गई। वे उन पर बाण नहीं छोड़ सके। मंत्री को बुलाकर खर-दूषण ने कहा- यह राजकुमार कोई मनुष्यों का भूषण है॥1॥

नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते॥
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुंदरताई॥2॥

जितने भी नाग, असुर, देवता, मनुष्य और मुनि हैं, उनमें से हमने न जाने कितने ही देखे, जीते और मार डाले हैं। पर हे सब भाइयों! सुनो, हमने जन्मभर में ऐसी सुंदरता कहीं नहीं देखी॥2॥

जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥
देहु तुरत निज नारि दुराई। जीअत भवन जाहु द्वौ भाई॥3॥

यद्यपि इन्होंने हमारी बहिन को कुरूप कर दिया तथापि ये अनुपम पुरुष वध करने योग्य नहीं हैं। 'छिपाई हुई अपनी स्त्री हमें तुरंत दे दो और दोनों भाई जीते जी घर लौट जाओ'॥3॥

मोर कहा तुम्ह ताहि सुनावहु। तासु बचन सुनि आतुर आवहु॥
दूतन्ह कहा राम सन जाई। सुनत राम बोले मुसुकाई॥4॥

मेरा यह कथन तुम लोग उसे सुनाओ और उसका वचन (उत्तर) सुनकर शीघ्र आओ। दूतों ने जाकर यह संदेश श्री रामचंद्रजी से कहा। उसे सुनते ही श्री रामचंद्रजी मुस्कुराकर बोले-॥4॥

हम छत्री मृगया बन करहीं। तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं॥
रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं। एक बार कालहु सन लरहीं॥5॥

हम क्षत्रिय हैं, वन में शिकार करते हैं और तुम्हारे सरीखे दुष्ट पशुओं को तो ढूँढते ही फिरते हैं। हम बलवान्‌ शत्रु देखकर नहीं डरते। (लड़ने को आवे तो) एक बार तो हम काल से भी लड़

सकते हैं॥5॥

जद्यपि मनुज दनुज कुल घालक। मुनि पालक खल सालक बालक॥
जौं न होइ बल घर फिरि जाहू। समर बिमुख मैं हतउँ न काहू॥6॥

यद्यपि हम मनुष्य हैं, परन्तु दैत्यकुल का नाश करने वाले और मुनियों की रक्षा करने वाले हैं, हम बालक हैं, परन्तु दुष्टों को दण्ड देने वाले। यदि बल न हो तो घर लौट जाओ। संग्राम में पीठ दिखाने वाले किसी को मैं नहीं मारता॥6॥

रन चढ़ि करिअ कपट चतुराई। रिपु पर कृपा परम कदराई॥
दूतन्ह जाइ तुरत सब कहेऊ। सुनि खर दूषन उर अति दहेऊ॥7॥

रण में चढ़ आकर कपट-चतुराई करना और शत्रु पर कृपा करना (दया दिखाना) तो बड़ी भारी कायरता है। दूतों ने लौटकर तुरंत सब बातें कहीं, जिन्हें सुनकर खर-दूषण का हृदय अत्यंत जल उठा॥7॥

छंद :

उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाए बिकट भट रजनीचरा।
सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसु धरा॥
प्रभु कीन्हि धनुष टकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा।
भए बधिर ब्याकुल जातुधान न ग्यान तेहि अवसर रहा॥

(खर-दूषण का) हृदय जल उठा। तब उन्होंने कहा- पकड़ लो (कैद कर लो)। (यह सुनकर) भयानक राक्षस योद्धा बाण, धनुष, तोमर, शक्ति (साँग), शूल (बरछी), कृपाण (कटार), परिघ और फरसा धारण किए हुए दौड़ पड़े। प्रभु श्री रामजी ने पहले धनुष का बड़ा कठोर, घोर और भयानक टंकार किया, जिसे सुनकर राक्षस बहरे और व्याकुल हो गए। उस समय उन्हें कुछ भी होश न रहा।

दोहा :

सावधान होइ धाए जानि सबल आराति।
लागे बरषन राम पर अस्त्र सस्त्र बहुभाँति॥19 क॥

फिर वे शत्रु को बलवान् जानकर सावधान होकर दौड़े और श्री रामचन्द्रजी के ऊपर बहुत प्रकार के अस्त्र-शस्त्र बरसाने लगे॥19 (क)॥

तिन्ह के आयुध तिल सम करि काटे रघुबीर।
तानि सरासन श्रवन लगि पुनि छाँड़े निज तीर॥19 ख॥

श्री रघुवीरजी ने उनके हथियारों को तिल के समान (टुकड़े-टुकड़े) करके काट डाला। फिर धनुष

को कान तक तानकर अपने तीर छोड़े॥19 (ख)॥

छन्द :

तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल॥
कोपेउ समर श्रीराम। चले बिसिख निसित निकाम॥1॥

तब भयानक बाण ऐसे चले, मानो फुफकारते हुए बहुत से सर्प जा रहे हैं। श्री रामचन्द्रजी संग्राम में क्रुद्ध हुए और अत्यन्त तीक्ष्ण बाण चले॥1॥

अवलोकि खरतर तीर। मुरि चले निसिचर बीर॥
भए क्रुद्ध तीनिउ भाइ। जो भागि रन ते जाइ॥2॥

अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों को देखकर राक्षस वीर पीठ दिखाकर भाग चले। तब खर-दूषण और त्रिशिरा तीनों भाई क्रुद्ध होकर बोले- जो रण से भागकर जाएगा,॥2॥

तेहि बधब हम निज पानि। फिरे मरन मन महुँ ठानि॥
आयुध अनेक प्रकार। सनमुख ते करहिं प्रहार॥3॥

उसका हम अपने हाथों वध करेंगे। तब मन में मरना ठानकर भागते हुए राक्षस लौट पड़े और सामने होकर वे अनेकों प्रकार के हथियारों से श्री रामजी पर प्रहार करने लगे॥3॥

रिपु परम कोपे जानि। प्रभु धनुष सर संधानि॥
छाँड़े बिपुल नाराच। लगे कटन बिकट पिसाच॥4॥

शत्रु को अत्यन्त कुपित जानकर प्रभु ने धनुष पर बाण चढ़ाकर बहुत से बाण छोड़े, जिनसे भयानक राक्षस कटने लगे॥4॥

उर सीस भुज कर चरन। जहँ तहँ लगे महि परन॥
चिक्करत लागत बान। धर परत कुधर समान॥5॥

उनकी छाती, सिर, भुजा, हाथ और पैर जहाँ-तहाँ पृथ्वी पर गिरने लगे। बाण लगते ही वे हाथी की तरह चिंग्घाड़ते हैं। उनके पहाड़ के समान धड़ कट-कटकर गिर रहे हैं॥5॥

भट कटत तन सत खंड। पुनि उठत करि पाषंड॥
नभ उड़त बहु भुज मुंड। बिनु मौलि धावत रुंड॥6॥

योद्धाओं के शरीर कटकर सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं। वे फिर माया करके उठ खड़े होते हैं। आकाश में बहुत सी भुजाएँ और सिर उड़ रहे हैं तथा बिना सिर के धड़ दौड़ रहे हैं॥6॥

खग कंक काक सृगाल। कटकटहिं कठिन कराल॥7॥

चील (या क्रौंच), कौए आदि पक्षी और सियार कठोर और भयंकर कट-कट शब्द कर रहे हैं॥7॥

छन्द :

कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खर्पर संचहीं।
बेताल बीर कपाल ताल बजाइ जोगिनि नंचहीं॥
रघुबीर बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा।
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धर धरु धरु करहिं भयंकर गिरा॥1॥

सियार कटकटाते हैं, भूत, प्रेत और पिशाच खोपड़ियाँ बटोर रहे हैं (अथवा खप्पर भर रहे हैं)। वीर-वैताल खोपड़ियों पर ताल दे रहे हैं और योगिनियाँ नाच रही हैं। श्री रघुवीर के प्रचंड बाण योद्धाओं के वक्षःस्थल, भुजा और सिरों के टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं। उनके धड़ जहाँ-तहाँ गिर पड़ते हैं, फिर उठते और लड़ते हैं और 'पकड़ो-पकड़ो' का भयंकर शब्द करते हैं॥1॥

अंतावरीं गहि उड़त गीध पिसाच कर गहि धावहीं।
संग्राम पुर बासी मनहुँ बहु बाल गुडी उड़ावहीं॥
मारे पछारे उर बिदारे बिपुल भट कहँरत परे।
अवलोकि निज दल बिकल भट तिसिरादि खर दूषन फिरे॥2॥

अंतड़ियों के एक छोर को पकड़कर गीध उड़ते हैं और उन्हीं का दूसरा छोर हाथ से पकड़कर पिशाच दौड़ते हैं, ऐसा मालूम होता है मानो संग्राम रूपी नगर के निवासी बहुत से बालक पतंग उड़ा रहे हों। अनेकों योद्धा मारे और पछाड़े गए बहुत से, जिनके हृदय विदीर्ण हो गए हैं, पड़े कराह रहे हैं। अपनी सेना को व्याकुल देखकर त्रिशिरा और खर-दूषण आदि योद्धा श्री रामजी की ओर मुड़े॥2॥

सरसक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहि बारहीं।
करि कोप श्री रघुबीर पर अगनित निसाचर डारहीं॥
प्रभु निमिष महुँ रिपु सर निवारि पचारि डारे सायका।
दस दस बिसिख उर माझ मारे सकल निसिचर नायका॥3॥

अनगिनत राक्षस क्रोध करके बाण, शक्ति, तोमर, फरसा, शूल और कृपाण एक ही बार में श्री रघुवीर पर छोड़ने लगे। प्रभु ने पल भर में शत्रुओं के बाणों को काटकर, ललकारकर उन पर अपने बाण छोड़े। सब राक्षस सेनापतियों के हृदय में दस-दस बाण मारे॥3॥

महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अति घनी।
सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक अवध धनी॥
सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक कर्‌यो।
देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपु दल लरि मर्‌यो॥4॥

योद्धा पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं, फिर उठकर भिड़ते हैं। मरते नहीं, बहुत प्रकार की अतिशय माया

रचते हैं। देवता यह देखकर डरते हैं कि प्रेत (राक्षस) चौदह हजार हैं और अयोध्यानाथ श्री रामजी अकेले हैं। देवता और मुनियों को भयभीत देखकर माया के स्वामी प्रभु ने एक बड़ा कौतुक किया, जिससे शत्रुओं की सेना एक-दूसरे को राम रूप देखने लगी और आपस में ही युद्ध करके लड़ मरी॥4॥

दोहा :

राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान।
करि उपाय रिपु मारे छन महुँ कृपानिधान॥20 क॥

सब ('यही राम है, इसे मारो' इस प्रकार) राम-राम कहकर शरीर छोड़ते हैं और निर्वाण (मोक्ष) पद पाते हैं। कृपानिधान श्री रामजी ने यह उपाय करके क्षण भर में शत्रुओं को मार डाला॥20 (क)॥

हरषित बरषहिं सुमन सुर बाजहिं गगन निसान।
अस्तुति करि करि सब चले सोभित बिबिध बिमान॥20 ख॥

देवता हर्षित होकर फूल बरसाते हैं, आकाश में नगाड़े बज रहे हैं। फिर वे सब स्तुति कर-करके अनेकों विमानों पर सुशोभित हुए चले गए॥20 (ख)॥

चौपाई :

जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सब के भय बीते॥
तब लछिमन सीतहि लै आए। प्रभु पद परत हरषि उर लाए॥1॥

जब श्री रघुनाथजी ने युद्ध में शत्रुओं को जीत लिया तथा देवता, मनुष्य और मुनि सबके भय नष्ट हो गए, तब लक्ष्मणजी सीताजी को ले आए। चरणों में पड़ते हुए उनको प्रभु ने प्रसन्नतापूर्वक उठाकर हृदय से लगा लिया॥1॥

सीता चितव स्याम मृदु गाता। परम प्रेम लोचन न अघाता॥
पंचबटीं बसि श्री रघुनायक। करत चरित सुर मुनि सुखदायक॥2॥

सीताजी श्री रामजी के श्याम और कोमल शरीर को परम प्रेम के साथ देख रही हैं, नेत्र अघाते नहीं हैं। इस प्रकार पंचवटी में बसकर श्री रघुनाथजी देवताओं और मुनियों को सुख देने वाले चरित्र करने लगे॥2॥

धुआँ देखि खरदूषन केरा। जाइ सुपनखाँ रावन प्रेरा॥
बोली बचन क्रोध करि भारी। देस कोस कै सुरति बिसारी॥3॥

खर-दूषण का विध्वंस देखकर शूर्पणखा ने जाकर रावण को भड़काया। वह बड़ा क्रोध करके वचन बोली- तूने देश और खजाने की सुधि ही भुला दी॥3॥

करसि पान सोवसि दिनु राती। सुधि नहिं तव सिर पर आराती॥

राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा॥4॥
बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ। श्रम फल पढ़ें किएँ अरु पाएँ॥
संग तें जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ग्यान पान तें लाजा॥5॥

शराब पी लेता है और दिन-रात पड़ा सोता रहता है। तुझे खबर नहीं है कि शत्रु तेरे सिर पर खड़ा है? नीति के बिना राज्य और धर्म के बिना धन प्राप्त करने से, भगवान को समर्पण किए बिना उत्तम कर्म करने से और विवेक उत्पन्न किए बिना विद्या पढ़ने से परिणाम में श्रम ही हाथ लगता है। विषयों के संग से संन्यासी, बुरी सलाह से राजा, मान से ज्ञान, मदिरा पान से लज्जा,॥4-5॥

प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहिं बेगि नीति अस सुनी॥6॥

नम्रता के बिना (नम्रता न होने से) प्रीति और मद (अहंकार) से गुणवान शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, इस प्रकार नीति मैंने सुनी है॥6॥

सोरठा :

रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि।
अस कहि बिबिध बिलाप करि लागी रोदन करन॥21 क॥

शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, स्वामी और सर्प को छोटा करके नहीं समझना चाहिए। ऐसा कहकर शूर्पणखा अनेक प्रकार से विलाप करके रोने लगी॥21 (क)॥

दोहा :

सभा माझ परि ब्याकुल बहु प्रकार कह रोइ।
तोहि जिअत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ॥21 ख॥

(रावण की) सभा के बीच वह व्याकुल होकर पड़ी हुई बहुत प्रकार से रो-रोकर कह रही है कि अरे दशग्रीव! तेरे जीते जी मेरी क्या ऐसी दशा होनी चाहिए?॥21 (ख)॥

चौपाई :

सुनत सभासद उठे अकुलाई। समुझाई गहि बाँह उठाई॥
कह लंकेस कहसि निज बाता। केइँ तव नासा कान निपाता॥1॥

शूर्पणखा के वचन सुनते ही सभासद् अकुला उठे। उन्होंने शूर्पणखा की बाँह पकड़कर उसे उठाया और समझाया। लंकापति रावण ने कहा- अपनी बात तो बता, किसने तेरे नाक-कान काट लिए?॥1॥

अवध नृपति दसरथ के जाए। पुरुष सिंघ बन खेलन आए॥
समुझि परी मोहि उन्ह कै करनी। रहित निसाचर करिहहिं धरनी॥2॥

(वह बोली-) अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र, जो पुरुषों में सिंह के समान हैं, वन में शिकार खेलने आए हैं। मुझे उनकी करनी ऐसी समझ पड़ी है कि वे पृथ्वी को राक्षसों से रहित कर देंगे॥2॥

जिन्ह कर भुजबल पाइ दसानन। अभय भए बिचरत मुनि कानन॥
देखत बालक काल समाना। परम धीर धन्वी गुन नाना॥3॥

जिनकी भुजाओं का बल पाकर हे दशमुख! मुनि लोग वन में निर्भय होकर विचरने लगे हैं। वे देखने में तो बालक हैं, पर हैं काल के समान। वे परम धीर, श्रेष्ठ धनुर्धर और अनेकों गुणों से युक्त हैं॥3॥

अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता। खल बध रत सुर मुनि सुखदाता॥
सोभा धाम राम अस नामा। तिन्ह के संग नारि एक स्यामा॥4॥

दोनों भाइयों का बल और प्रताप अतुलनीय है। वे दुष्टों का वध करने में लगे हैं और देवता तथा मुनियों को सुख देने वाले हैं। वे शोभा के धाम हैं, 'राम' ऐसा उनका नाम है। उनके साथ एक तरुणी सुंदर स्त्री है॥4॥

रूप रासि बिधि नारि सँवारी। रति सत कोटि तासु बलिहारी॥
तासु अनुज काटे श्रुति नासा। सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा॥5॥

विधाता ने उस स्त्री को ऐसी रूप की राशि बनाया है कि सौ करोड़ रति (कामदेव की स्त्री) उस पर निछावर हैं। उन्हीं के छोटे भाई ने मेरे नाक-कान काट डाले। मैं तेरी बहिन हूँ, यह सुनकर वे मेरी हँसी करने लगे॥5॥

खर दूषन सुनि लगे पुकारा। छन महुँ सकल कटक उन्ह मारा॥
खर दूषन तिसिरा कर घाता। सुनि दससीस जरे सब गाता॥6॥

मेरी पुकार सुनकर खर-दूषण सहायता करने आए। पर उन्होंने क्षण भर में सारी सेना को मार डाला। खर-दूषन और त्रिशिरा का वध सुनकर रावण के सारे अंग जल उठे॥6॥

दोहा :

सूपनखहि समुझाइ करि बल बोलेसि बहु भाँति।
गयउ भवन अति सोचबस नीद परइ नहिं राति॥22॥

उसने शूर्पणखा को समझाकर बहुत प्रकार से अपने बल का बखान किया, किन्तु (मन में) वह अत्यन्त चिंतावश होकर अपने महल में गया, उसे रात भर नींद नहीं पड़ी॥22॥

चौपाई :

सुर नर असुर नाग खग माहीं। मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं॥

खर दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता॥1॥

(वह मन ही मन विचार करने लगा-) देवता, मनुष्य, असुर, नाग और पक्षियों में कोई ऐसा नहीं, जो मेरे सेवक को भी पा सके। खर-दूषण तो मेरे ही समान बलवान थे। उन्हें भगवान के सिवा और कौन मार सकता है?॥1॥

सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ॥2॥

देवताओं को आनंद देने वाले और पृथ्वी का भार हरण करने वाले भगवान ने ही यदि अवतार लिया है, तो मैं जाकर उनसे हठपूर्वक वैर करूँगा और प्रभु के बाण (के आघात) से प्राण छोड़कर भवसागर से तर जाऊँगा॥2॥

होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा॥
जौं नररूप भूपसुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ॥3॥

इस तामस शरीर से भजन तो होगा नहीं, अतएव मन, वचन और कर्म से यही दृढ़ निश्चय है। और यदि वे मनुष्य रूप कोई राजकुमार होंगे तो उन दोनों को रण में जीतकर उनकी स्त्री को हर लूँगा॥3॥

चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ। बस मारीच सिंधु तट जहवाँ॥
इहाँ राम जसि जुगुति बनाई। सुनहु उमा सो कथा सुहाई॥4॥

राक्षसों की भयानक सेना आ गई है। जानकीजी को लेकर तुम पर्वत की कंदरा में चले जाओ। सावधान रहना। प्रभु श्री रामचंद्रजी के वचन सुनकर लक्ष्मणजी हाथ में धनुष-बाण लिए श्री सीताजी सहित चले॥6॥

दोहा :

लछिमन गए बनहिं जब लेन मूल फल कंद।
जनकसुता सन बोले बिहसि कृपा सुख बृंद॥23॥

लक्ष्मणजी जब कंद-मूल-फल लेने के लिए वन में गए, तब (अकेले में) कृपा और सुख के समूह श्री रामचंद्रजी हँसकर जानकीजी से बोले-॥23॥

चौपाई :

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नरलीला॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा॥1॥

हे प्रिये! हे सुंदर पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली सुशीले! सुनो! मैं अब कुछ मनोहर मनुष्य लीला करूँगा, इसलिए जब तक मैं राक्षसों का नाश करूँ, तब तक तुम अग्नि में निवास करो॥

1॥

जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी॥
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता॥2॥

श्री रामजी ने ज्यों ही सब समझाकर कहा, त्यों ही श्री सीताजी प्रभु के चरणों को हृदय में धरकर अग्नि में समा गईं। सीताजी ने अपनी ही छाया मूर्ति वहाँ रख दी, जो उनके जैसे ही शील-स्वभाव और रूपवाली तथा वैसे ही विनम्र थी॥2॥

लछिमनहूँ यह मरमु न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना॥
दसमुख गयउ जहाँ मारीचा। नाइ माथ स्वारथ रत नीचा॥3॥

भगवान ने जो कुछ लीला रची, इस रहस्य को लक्ष्मणजी ने भी नहीं जाना। स्वार्थ परायण और नीच रावण वहाँ गया, जहाँ मारीच था और उसको सिर नवाया॥3॥

नवनि नीच कै अति दुखदाई। जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई॥
भयदायक खल कै प्रिय बानी। जिमि अकाल के कुसुम भवानी॥4॥

नीच का झुकना (नम्रता) भी अत्यन्त दुःखदायी होता है। जैसे अंकुश, धनुष, साँप और बिल्ली का झुकना। हे भवानी! दुष्ट की मीठी वाणी भी (उसी प्रकार) भय देने वाली होती है, जैसे बिना ऋतु के फूल!॥4॥

दोहा :

करि पूजा मारीच तब सादर पूछी बात।
कवन हेतु मन ब्यग्र अति अकसर आयहु तात॥24॥

तब मारीच ने उसकी पूजा करके आदरपूर्वक बात पूछी- हे तात! आपका मन किस कारण इतना अधिक व्यग्र है और आप अकेले आए हैं?॥24॥

चौपाई :

दसमुख सकल कथा तेहि आगें। कही सहित अभिमान अभागें॥
होहु कपट मृग तुम्ह छलकारी। जेहि बिधि हरि आनौं नृपनारी॥1॥

भाग्यहीन रावण ने सारी कथा अभिमान सहित उसके सामने कही (और फिर कहा-) तुम छल करने वाले कपटमृग बनो, जिस उपाय से मैं उस राजवधू को हर लाऊँ॥1॥

तेहिं पुनि कहा सुनहु दससीसा। ते नररूप चराचर ईसा॥
तासों तात बयरु नहिं कीजै। मारें मरिअ जिआएँ जीजै॥2॥

तब उसने (मारीच ने) कहा- हे दशशीश! सुनिए। वे मनुष्य रूप में चराचर के ईश्वर हैं। हे तात! उनसे वैर न कीजिए। उन्हीं के मारने से मरना और उनके जिलाने से जीना होता है (सबका

जीवन-मरण उन्हीं के अधीन है)॥2॥

मुनि मख राखन गयउ कुमारा। बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा॥
सत जोजन आयउँ छन माहीं। तिन्ह सन बयरु किएँ भल नाहीं॥3॥

यही राजकुमार मुनि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए गए थे। उस समय श्री रघुनाथजी ने बिना फल का बाण मुझे मारा था, जिससे मैं क्षणभर में सौ योजन पर आ गिरा। उनसे वैर करने में भलाई नहीं है॥3॥

भइ मम कीट भृंग की नाई। जहँ तहँ मैं देखउँ दोउ भाई॥
जौं नर तात तदपि अति सूरा। तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा॥4॥

मेरी दशा तो भृंगी के कीड़े की सी हो गई है। अब मैं जहाँ-तहाँ श्री राम-लक्ष्मण दोनों भाइयों को ही देखता हूँ। और हे तात! यदि वे मनुष्य हैं, तो भी बड़े शूरवीर हैं। उनसे विरोध करने में पूरा न पड़ेगा (सफलता नहीं मिलेगी)॥4॥

दोहा :

जेहिं ताड़का सुबाहु हति खंडेउ हर कोदंड।
खर दूषन तिसिरा बधेउ मनुज कि अस बरिबंड॥25॥

जिसने ताड़का और सुबाहु को मारकर शिवजी का धनुष तोड़ दिया और खर, दूषण और त्रिशिरा का वध कर डाला, ऐसा प्रचंड बली भी कहीं मनुष्य हो सकता है?॥25॥

चौपाई :

जाहु भवन कुल कुसल बिचारी। सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी॥
गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा। कहु जग मोहि समान को जोधा॥1॥

अतः अपने कुल की कुशल विचारकर आप घर लौट जाइए। यह सुनकर रावण जल उठा और उसने बहुत सी गालियाँ दीं (दुर्वचन कहे)। (कहा-) अरे मूर्ख! तू गुरु की तरह मुझे ज्ञान सिखाता है? बता तो संसार में मेरे समान योद्धा कौन है?॥1॥

तब मारीच हृदयँ अनुमाना। नवहि बिरोधें नहिं कल्याना॥
सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। बैद बंदि कबि भानस गुनी॥2॥

तब मारीच ने हृदय में अनुमान किया कि शस्त्री (शस्त्रधारी), मर्मी (भेद जानने वाला), समर्थ स्वामी, मूर्ख, धनवान, वैद्य, भाट, कवि और रसोइया- इन नौ व्यक्तियों से विरोध (वैर) करने में कल्याण (कुशल) नहीं होता॥2॥

उभय भाँति देखा निज मरना। तब ताकिसि रघुनायक सरना॥
उतरु देत मोहि बधब अभागें। कस न मरौं रघुपति सर लागें॥3॥

जब मारीच ने दोनों प्रकार से अपना मरण देखा, तब उसने श्री रघुनाथजी की शरण तकी (अर्थात उनकी शरण जाने में ही कल्याण समझा)। (सोचा कि) उत्तर देते ही (नाहीं करते ही) यह अभागा मुझे मार डालेगा। फिर श्री रघुनाथजी के बाण लगने से ही क्यों न मरूँ॥3॥

अस जियँ जानि दसानन संगा। चला राम पद प्रेम अभंगा॥
मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहउँ परम सनेही॥4॥

हृदय में ऐसा समझकर वह रावण के साथ चला। श्री रामजी के चरणों में उसका अखंड प्रेम है। उसके मन में इस बात का अत्यन्त हर्ष है कि आज मैं अपने परम स्नेही श्री रामजी को देखूँगा, किन्तु उसने यह हर्ष रावण को नहीं जनाया॥4॥

छन्द :

निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं।
श्रीसहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं॥
निर्बान दायक क्रोध जा कर भगति अबसहि बसकरी।
निज पानि सर संधानि सो मोहि बधिहि सुखसागर हरी॥

(वह मन ही मन सोचने लगा-) अपने परम प्रियतम को देखकर नेत्रों को सफल करके सुख पाऊँगा। जानकीजी सहित और छोटे भाई लक्ष्मणजी समेत कृपानिधान श्री रामजी के चरणों में मन लगाऊँगा। जिनका क्रोध भी मोक्ष देने वाला है और जिनकी भक्ति उन अवश (किसी के वश में न होने वाले, स्वतंत्र भगवान) को भी वश में करने वाली है, अब वे ही आनंद के समुद्र श्री हरि अपने हाथों से बाण सन्धानकर मेरा वध करेंगे।

दोहा :

मम पाछें धर धावत धरें सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहउँ धन्य न मो सम आन॥26॥

धनुष-बाण धारण किए मेरे पीछे-पीछे पृथ्वी पर (पकड़ने के लिए) दौड़ते हुए प्रभु को मैं फिर-फिरकर देखूँगा। मेरे समान धन्य दूसरा कोई नहीं है॥26॥

चौपाई :

तेहि बननिकट दसानन गयऊ। तब मारीच कपटमृग भयऊ॥
अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनक देह मनि रचित बनाई॥1॥

जब रावण उस वन के (जिस वन में श्री रघुनाथजी रहते थे) निकट पहुँचा, तब मारीच कपटमृग बन गया! वह अत्यन्त ही विचित्र था, कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता। सोने का शरीर मणियों से जड़कर बनाया था॥1॥

सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेषा॥
सुनहु देव रघुबीर कृपाला। एहि मृग कर अति सुंदर छाला॥2॥

सीताजी ने उस परम सुंदर हिरन को देखा, जिसके अंग-अंग की छटा अत्यन्त मनोहर थी। (वे कहने लगीं-) हे देव! हे कृपालु रघुवीर! सुनिए। इस मृग की छाल बहुत ही सुंदर है॥2॥

सत्यसंध प्रभु बधि करि एही। आनहु चर्म कहति बैदेही॥
तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर काजु सँवारन॥3॥

जानकीजी ने कहा- हे सत्यप्रतिज्ञ प्रभो! इसको मारकर इसका चमड़ा ला दीजिए। तब श्री रघुनाथजी (मारीच के कपटमृग बनने का) सब कारण जानते हुए भी, देवताओं का कार्य बनाने के लिए हर्षित होकर उठे॥3॥

मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा। करतल चाप रुचिर सर साँधा॥
प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई। फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई॥4॥

हिरन को देखकर श्री रामजी ने कमर में फेंटा बाँधा और हाथ में धनुष लेकर उस पर सुंदर (दिव्य) बाण चढ़ाया। फिर प्रभु ने लक्ष्मणजी को समझाकर कहा- हे भाई! वन में बहुत से राक्षस फिरते हैं॥4॥

सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी॥
प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाए रामु सरासन साजी॥5॥

तुम बुद्धि और विवेक के द्वारा बल और समय का विचार करके सीताजी की रखवाली करना। प्रभु को देखकर मृग भाग चला। श्री रामचन्द्रजी भी धनुष चढ़ाकर उसके पीछे दौड़े॥5॥

निगम नेति सिव ध्यान न पावा। मायामृग पाछें सो धावा॥
कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहुँक प्रगटइ कबहुँ छपाई॥6॥

वेद जिनके विषय में 'नेति-नेति' कहकर रह जाते हैं और शिवजी भी जिन्हें ध्यान में नहीं पाते (अर्थात जो मन और वाणी से नितान्त परे हैं), वे ही श्री रामजी माया से बने हुए मृग के पीछे दौड़ रहे हैं। वह कभी निकट आ जाता है और फिर दूर भाग जाता है। कभी तो प्रकट हो जाता है और कभी छिप जाता है॥6॥

प्रगटत दुरत करत छल भूरी। एहि बिधि प्रभुहि गयउ लै दूरी॥
तब तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परेउ करि घोर पुकारा॥7॥

इस प्रकार प्रकट होता और छिपता हुआ तथा बहुतेरे छल करता हुआ वह प्रभु को दूर ले गया। तब श्री रामचन्द्रजी ने तक कर (निशाना साधकर) कठोर बाण मारा, (जिसके लगते ही) वह घोर शब्द करके पृथ्वी पर गिर पड़ा॥7॥

लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा। पाछें सुमिरेसि मन महुँ रामा॥
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरेसि रामु समेत सनेहा॥8॥

पहले लक्ष्मणजी का नाम लेकर उसने पीछे मन में श्री रामजी का स्मरण किया। प्राण त्याग करते समय उसने अपना (राक्षसी) शरीर प्रकट किया और प्रेम सहित श्री रामजी का स्मरण किया॥8॥

अंतर प्रेम तासु पहिचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना॥9॥

सुजान (सर्वज्ञ) श्री रामजी ने उसके हृदय के प्रेम को पहचानकर उसे वह गति (अपना परमपद) दी जो मुनियों को भी दुर्लभ है॥9॥

दोहा :

बिपुल सुमर सुर बरषहिं गावहिं प्रभु गुन गाथ।
निज पद दीन्ह असुर कहुँ दीनबंधु रघुनाथ॥27॥

देवता बहुत से फूल बरसा रहे हैं और प्रभु के गुणों की गाथाएँ (स्तुतियाँ) गा रहे हैं (कि) श्री रघुनाथजी ऐसे दीनबन्धु हैं कि उन्होंने असुर को भी अपना परम पद दे दिया॥27॥

चौपाई :

खल बधि तुरत फिरे रघुबीरा। सोह चाप कर कटि तूनीरा॥
आरत गिरा सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम सभीता॥1॥

दुष्ट मारीच को मारकर श्री रघुवीर तुरंत लौट पड़े। हाथ में धनुष और कमर में तरकस शोभा दे रहा है। इधर जब सीताजी ने दुःखभरी वाणी (मरते समय मारीच की 'हा लक्ष्मण' की आवाज) सुनी तो वे बहुत ही भयभीत होकर लक्ष्मणजी से कहने लगीं॥1॥

जाहु बेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहसि कहा सुनु माता॥
भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहुँ संकट परइ कि सोई॥2॥

तुम शीघ्र जाओ, तुम्हारे भाई बड़े संकट में हैं। लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा- हे माता! सुनो, जिनके भृकुटि विलास (भौं के इशारे) मात्र से सारी सृष्टि का लय (प्रलय) हो जाता है, वे श्री रामजी क्या कभी स्वप्न में भी संकट में पड़ सकते हैं?॥2॥

मरम बचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला॥
बन दिसि देव सौंपि सब काहू। चले जहाँ रावन ससि राहू॥3॥

इस पर जब सीताजी कुछ मर्म वचन (हृदय में चुभने वाले वचन) कहने लगीं, तब भगवान की प्रेरणा से लक्ष्मणजी का मन भी चंचल हो उठा। वे श्री सीताजी को वन और दिशाओं के देवताओं को सौंपकर वहाँ चले, जहाँ रावण रूपी चन्द्रमा के लिए राहु रूप श्री रामजी थे॥3॥

सून बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती कें बेषा॥
जाकें डर सुर असुर डेराहीं। निसि न नीद दिन अन्न न खाहीं॥4॥

रावण सूना मौका देखकर यति (संन्यासी) के वेष में श्री सीताजी के समीप आया, जिसके डर से देवता और दैत्य तक इतना डरते हैं कि रात को नींद नहीं आती और दिन में (भरपेट) अन्न नहीं खाते-॥4॥

सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़िहाईं॥
इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधि बल लेसा॥5॥

वही दस सिर वाला रावण कुत्ते की तरह इधर-उधर ताकता हुआ भड़िहाई (चोरी) के लिए चला। (काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) हे गरुड़जी! इस प्रकार कुमार्ग पर पैर रखते ही शरीर में तेज तथा बुद्धि एवं बल का लेश भी नहीं रह जाता॥5॥

सूना पाकर कुत्ता चुपके से बर्तन-भाँड़ों में मुँह डालकर कुछ चुरा ले जाता है। उसे 'भड़िहाई' कहते हैं।

नाना बिधि करि कथा सुहाई। राजनीति भय प्रीति देखाई॥
कह सीता सुनु जती गोसाईं। बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं॥6॥

रावण ने अनेकों प्रकार की सुहावनी कथाएँ रचकर सीताजी को राजनीति, भय और प्रेम दिखलाया। सीताजी ने कहा- हे यति गोसाईं! सुनो, तुमने तो दुष्ट की तरह वचन कहे॥6।

तब रावन निज रूप देखावा। भई सभय जब नाम सुनावा॥
कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा। आइ गयउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा॥7॥

तब रावण ने अपना असली रूप दिखलाया और जब नाम सुनाया तब तो सीताजी भयभीत हो गईं। उन्होंने गहरा धीरज धरकर कहा- 'अरे दुष्ट! खड़ा तो रह, प्रभु आ गए'॥7॥

जिमि हरिबधुहि छुद्र सस चाहा। भएसि कालबस निसिचर नाहा॥
सुनत बचन दससीस रिसाना। मन महुँ चरन बंदि सुख माना॥8॥

जैसे सिंह की स्त्री को तुच्छ खरगोश चाहे, वैसे ही अरे राक्षसराज! तू (मेरी चाह करके) काल के वश हुआ है। ये वचन सुनते ही रावण को क्रोध आ गया, परन्तु मन में उसने सीताजी के चरणों की वंदना करके सुख माना॥8॥

दोहा :

क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ।
चला गगनपथ आतुर भयँ रथ हाँकि न जाइ॥28॥

फिर क्रोध में भरकर रावण ने सीताजी को रथ पर बैठा लिया और वह बड़ी उतावली के साथ

आकाश मार्ग से चला, किन्तु डर के मारे उससे रथ हाँका नहीं जाता था॥28॥

चौपाई :

हा जग एक बीर रघुराया। केहिं अपराध बिसारेहु दाया॥
आरति हरन सरन सुखदायक। हा रघुकुल सरोज दिननायक॥1॥

(सीताजी विलाप कर रही थीं-) हा जगत के अद्वितीय वीर श्री रघुनाथजी! आपने किस अपराध से मुझ पर दया भुला दी। हे दुःखों के हरने वाले, हे शरणागत को सुख देने वाले, हा रघुकुल रूपी कमल के सूर्य!॥1॥

हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा। सो फलु पायउँ कीन्हेउँ रोसा॥
बिबिध बिलाप करति बैदेही। भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही॥2॥

हा लक्ष्मण! तुम्हारा दोष नहीं है। मैंने क्रोध किया, उसका फल पाया। श्री जानकीजी बहुत प्रकार से विलाप कर रही हैं- (हाय!) प्रभु की कृपा तो बहुत है, परन्तु वे स्नेही प्रभु बहुत दूर रह गए हैं॥2॥

बिपति मोरि को प्रभुहि सुनावा। पुरोडास चह रासभ खावा॥
सीता कै बिलाप सुनि भारी। भए चराचर जीव दुखारी॥3॥

प्रभु को मेरी यह विपत्ति कौन सुनावे? यज्ञ के अन्न को गदहा खाना चाहता है। सीताजी का भारी विलाप सुनकर जड़-चेतन सभी जीव दुःखी हो गए॥3॥

गीधराज सुनि आरत बानी। रघुकुलतिलक नारि पहिचानी॥
अधम निसाचर लीन्हें जाई। जिमि मलेछ बस कपिला गाई॥4॥

गृध्रराज जटायु ने सीताजी की दुःखभरी वाणी सुनकर पहचान लिया कि ये रघुकुल तिलक श्री रामचन्द्रजी की पत्नी हैं। (उसने देखा कि) नीच राक्षस इनको (बुरी तरह) लिए जा रहा है, जैसे कपिला गाय म्लेच्छ के पाले पड़ गई हो॥4॥

सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहउँ जातुधान कर नासा॥
धावा क्रोधवंत खग कैसें। छूटइ पबि परबत कहुँ जैसें॥5॥

(वह बोला-) हे सीते पुत्री! भय मत कर। मैं इस राक्षस का नाश करूँगा। (यह कहकर) वह पक्षी क्रोध में भरकर ऐसे दौड़ा, जैसे पर्वत की ओर वज्र छूटता हो॥5॥

रे रे दुष्ट ठाढ़ किन हो ही। निर्भय चलेसि न जानेहि मोही॥
आवत देखि कृतांत समाना। फिरि दसकंधर कर अनुमाना॥6॥

(उसने ललकारकर कहा-) रे रे दुष्ट! खड़ा क्यों नहीं होता? निडर होकर चल दिया! मुझे तूने नहीं जाना? उसको यमराज के समान आता हुआ देखकर रावण घूमकर मन में अनुमान करने

लगा-॥6॥

की मैनाक कि खगपति होई। मम बल जान सहित पति सोई॥
जाना जरठ जटायू एहा। मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा॥7॥

यह या तो मैनाक पर्वत है या पक्षियों का स्वामी गरुड़। पर वह (गरुड़) तो अपने स्वामी विष्णु सहित मेरे बल को जानता है! (कुछ पास आने पर) रावण ने उसे पहचान लिया (और बोला-) यह तो बूढ़ा जटायु है। यह मेरे हाथ रूपी तीर्थ में शरीर छोड़ेगा॥7॥

सुनत गीध क्रोधातुर धावा। कह सुनु रावन मोर सिखावा॥
तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू। नाहिं त अस होइहि बहुबाहू॥8॥

यह सुनते ही गीध क्रोध में भरकर बड़े वेग से दौड़ा और बोला- रावण! मेरी सिखावन सुन। जानकीजी को छोड़कर कुशलपूर्वक अपने घर चला जा। नहीं तो हे बहुत भुजाओं वाले! ऐसा होगा कि-॥8॥

राम रोष पावक अति घोरा। होइहि सकल सलभ कुल तोरा॥
उतरु न देत दसानन जोधा। तबहिं गीध धावा करि क्रोधा॥9॥

श्री रामजी के क्रोध रूपी अत्यन्त भयानक अग्नि में तेरा सारा वंश पतिंगा (होकर भस्म) हो जाएगा। योद्धा रावण कुछ उत्तर नहीं देता। तब गीध क्रोध करके दौड़ा॥9॥

धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा। सीतहि राखि गीध पुनि फिरा॥
चोचन्ह मारि बिदारेसि देही। दंड एक भइ मुरुछा तेही॥10॥

उसने (रावण के) बाल पकड़कर उसे रथ के नीचे उतार लिया, रावण पृथ्वी पर गिर पड़ा। गीध सीताजी को एक ओर बैठाकर फिर लौटा और चोंचों से मार-मारकर रावण के शरीर को विदीर्ण कर डाला। इससे उसे एक घड़ी के लिए मूर्च्छा हो गई॥10॥

तब सक्रोध निसिचर खिसिआना। काढ़ेसि परम कराल कृपाना॥
काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम करि अदभुत करनी॥11॥

तब खिसियाए हुए रावण ने क्रोधयुक्त होकर अत्यन्त भयानक कटार निकाली और उससे जटायु के पंख काट डाले। पक्षी (जटायु) श्री रामजी की अद्भुत लीला का स्मरण करके पृथ्वी पर गिर पड़ा॥11॥

सीतहि जान चढ़ाइ बहोरी। चला उताइल त्रास न थोरी॥
करति बिलाप जाति नभ सीता। ब्याध बिबस जनु मृगी सभीता॥12॥

सीताजी को फिर रथ पर चढ़ाकर रावण बड़ी उतावली के साथ चला। उसे भय कम न था। सीताजी आकाश में विलाप करती हुई जा रही हैं। मानो व्याधे के वश में पड़ी हुई (जाल में

फँसी हुई) कोई भयभीत हिरनी हो!॥12॥

गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी। कहि हरि नाम दीन्ह पट डारी॥
एहि बिधि सीतहि सो लै गयऊ। बन असोक महँ राखत भयऊ॥13॥
पर्वत पर बैठे हुए बंदरों को देखकर सीताजी ने हरिनाम लेकर वस्त्र डाल दिया। इस प्रकार वह सीताजी को ले गया और उन्हें अशोक वन में जा रखा॥13॥

दोहा :
हारि परा खल बहु बिधि भय अरु प्रीति देखाइ।
तब असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ॥29 क॥
सीताजी को बहुत प्रकार से भय और प्रीति दिखलाकर जब वह दुष्ट हार गया, तब उन्हें यत्न कराके (सब व्यवस्था ठीक कराके) अशोक वृक्ष के नीचे रख दिया॥29 (क)॥

नवाह्नपारायण, छठा विश्राम

जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम॥29 ख॥
जिस प्रकार कपट मृग के साथ श्री रामजी दौड़ चले थे, उसी छवि को हृदय में रखकर वे हरिनाम (रामनाम) रटती रहती हैं॥29 (ख)॥

चौपाई :
रघुपति अनुजहि आवत देखी। बाहिज चिंता कीन्हि बिसेषी॥
जनकसुता परिहरिहु अकेली। आयहु तात बचन मम पेली॥1॥
(इधर) श्री रघुनाथजी ने छोटे भाई लक्ष्मणजी को आते देखकर ब्राह्य रूप में बहुत चिंता की (और कहा-) हे भाई! तुमने जानकी को अकेली छोड़ दिया और मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर यहाँ चले आए!॥1॥

निसिचर निकर फिरहिं बन माहीं। मम मन सीता आश्रम नाहीं॥
गहि पद कमल अनुज कर जोरी। कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी॥2॥
राक्षसों के झुंड वन में फिरते रहते हैं। मेरे मन में ऐसा आता है कि सीता आश्रम में नहीं है। छोटे भाई लक्ष्मणजी ने श्री रामजी के चरणकमलों को पकड़कर हाथ जोड़कर कहा- हे नाथ! मेरा कुछ भी दोष नहीं है॥2॥

अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ। गोदावरि तट आश्रम जहवाँ॥

आश्रम देखि जानकी हीना। भए बिकल जस प्राकृत दीना॥3॥

लक्ष्मणजी सहित प्रभु श्री रामजी वहाँ गए, जहाँ गोदावरी के तट पर उनका आश्रम था। आश्रम को जानकीजी से रहित देखकर श्री रामजी साधारण मनुष्य की भाँति व्याकुल और दीन (दुःखी) हो गए॥3॥

हा गुन खानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता॥
लछिमन समुझाए बहु भाँति। पूछत चले लता तरु पाँती॥4॥

(वे विलाप करने लगे-) हा गुणों की खान जानकी! हा रूप, शील, व्रत और नियमों में पवित्र सीते! लक्ष्मणजी ने बहुत प्रकार से समझाया। तब श्री रामजी लताओं और वृक्षों की पंक्तियों से पूछते हुए चले॥4॥

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना॥5॥

हे पक्षियों! हे पशुओं! हे भौंरों की पंक्तियों! तुमने कहीं मृगनयनी सीता को देखा है? खंजन, तोता, कबूतर, हिरन, मछली, भौंरों का समूह, प्रवीण कोयल,॥5॥

कुंद कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहिभामिनी॥
बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा॥6॥

कुन्दकली, अनार, बिजली, कमल, शरद् का चंद्रमा और नागिनी, अरुण का पाश, कामदेव का धनुष, हंस, गज और सिंह- ये सब आज अपनी प्रशंसा सुन रहे हैं॥6॥

श्री फल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू॥7॥

बेल, सुवर्ण और केला हर्षित हो रहे हैं। इनके मन में जरा भी शंका और संकोच नहीं है। हे जानकी! सुनो, तुम्हारे बिना ये सब आज ऐसे हर्षित हैं, मानो राज पा गए हों। (अर्थात् तुम्हारे अंगों के सामने ये सब तुच्छ, अपमानित और लज्जित थे। आज तुम्हें न देखकर ये अपनी शोभा के अभिमान में फूल रहे हैं)॥7॥

किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं॥
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अति कामी॥8॥

तुमसे यह अनख (स्पर्धा) कैसे सही जाती है? हे प्रिये! तुम शीघ्र ही प्रकट क्यों नहीं होती? इस प्रकार (अनन्त ब्रह्माण्डों के अथवा महामहिमामयी स्वरूपाशक्ति श्री सीताजी के) स्वामी श्री रामजी सीताजी को खोजते हुए (इस प्रकार) विलाप करते हैं, मानो कोई महाविरही और अत्यंत कामी पुरुष हो॥8॥

पूरकनाम राम सुख रासी। मनुजचरित कर अज अबिनासी॥
आगें परा गीधपति देखा। सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा॥9॥

पूर्णकाम, आनंद की राशि, अजन्मा और अविनाशी श्री रामजी मनुष्यों के चरित्र कर रहे हैं। आगे (जाने पर) उन्होंने गृध्रपति जटायु को पड़ा देखा। वह श्री रामजी के चरणों का स्मरण कर रहा था, जिनमें (ध्वजा, कुलिश आदि की) रेखाएँ (चिह्न) हैं॥9॥

दोहा :

कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर।
निरखि राम छबि धाम मुख बिगत भई सब पीर॥30॥

कृपा सागर श्री रघुवीर ने अपने करकमल से उसके सिर का स्पर्श किया (उसके सिर पर करकमल फेर दिया)। शोभाधाम श्री रामजी का (परम सुंदर) मुख देखकर उसकी सब पीड़ा जाती रही॥30॥

चौपाई :

तब कह गीध बचन धरि धीरा। सुनहु राम भंजन भव भीरा॥
नाथ दसानन यह गति कीन्ही। तेहिं खल जनकसुता हरि लीन्ही॥1॥

तब धीरज धरकर गीध ने यह वचन कहा- हे भव (जन्म-मृत्यु) के भय का नाश करने वाले श्री रामजी! सुनिए। हे नाथ! रावण ने मेरी यह दशा की है। उसी दुष्ट ने जानकीजी को हर लिया है॥1॥

लै दच्छिन दिसि गयउ गोसाईं। बिलपति अति कुररी की नाईं॥
दरस लाग प्रभु राखेउँ प्राना। चलन चहत अब कृपानिधाना॥2॥

हे गोसाईं! वह उन्हें लेकर दक्षिण दिशा को गया है। सीताजी कुररी (कुर्ज) की तरह अत्यंत विलाप कर रही थीं। हे प्रभो! आपके दर्शनों के लिए ही प्राण रोक रखे थे। हे कृपानिधान! अब ये चलना ही चाहते हैं॥2॥

राम कहा तनु राखहु ताता। मुख मुसुकाइ कही तेहिं बाता॥
जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा॥3॥

श्री रामचंद्रजी ने कहा- हे तात! शारीर को बनाए रखिए। तब उसने मुस्कुराते हुए मुँह से यह बात कही- मरते समय जिनका नाम मुख में आ जाने से अधम (महान् पापी) भी मुक्त हो जाता है, ऐसा वेद गाते हैं-॥3॥

सो मम लोचन गोचर आगें। राखौं देह नाथ केहि खाँगें॥
जल भरि नयन कहहिं रघुराई। तात कर्म निज तें गति पाई॥4॥

वही (आप) मेरे नेत्रों के विषय होकर सामने खड़े हैं। हे नाथ! अब मैं किस कमी (की पूर्ति) के लिए देह को रखूँ? नेत्रों में जल भरकर श्री रघुनाथजी कहने लगे- हे तात! आपने अपने श्रेष्ठ कर्मों से (दुर्लभ) गति पाई है॥4॥

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥
तनु तिज तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरनकामा॥5॥

जिनके मन में दूसरे का हित बसता है (समाया रहता है), उनके लिए जगत् में कुछ भी (कोई भी गति) दुर्लभ नहीं है। हे तात! शरीर छोड़कर आप मेरे परम धाम में जाइए। मैं आपको क्या दूँ? आप तो पूर्णकाम हैं (सब कुछ पा चुके हैं)॥5॥

दोहा :

सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ॥31॥

हे तात! सीता हरण की बात आप जाकर पिताजी से न कहिएगा। यदि मैं राम हूँ तो दशमुख रावण कुटुम्ब सहित वहाँ आकर स्वयं ही कहेगा॥31॥

चौपाई :

गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा॥
स्याम गात बिसाल भुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी॥1॥

जटायु ने गीध की देह त्यागकर हरि का रूप धारण किया और बहुत से अनुपम (दिव्य) आभूषण और (दिव्य) पीताम्बर पहन लिए। श्याम शरीर है, विशाल चार भुजाएँ हैं और नेत्रों में (प्रेम तथा आनंद के आँसुओं का) जल भरकर वह स्तुति कर रहा है-॥1॥

छंद :

जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।
दससीस बाहु प्रचंड खंडन चंड सर मंडन मही॥
पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचनं।
नित नौमि रामु कृपाल बाहु बिसाल भव भय मोचनं॥1॥

हे रामजी! आपकी जय हो। आपका रूप अनुपम है, आप निर्गुण हैं, सगुण हैं और सत्य ही गुणों के (माया के) प्रेरक हैं। दस सिर वाले रावण की प्रचण्ड भुजाओं को खंड-खंड करने के लिए प्रचण्ड बाण धारण करने वाले, पृथ्वी को सुशोभित करने वाले, जलयुक्त मेघ के समान श्याम शरीर वाले, कमल के समान मुख और (लाल) कमल के समान विशाल नेत्रों वाले, विशाल भुजाओं वाले और भव-भय से छुड़ाने वाले कृपालु श्री रामजी को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ॥1॥

बलमप्रमेयमनादिमजमब्यक्तमेकमगोचरं।
गोबिंद गोपर द्वंद्वहर बिग्यानघन धरनीधरं॥
जे राम मंत्र जपंत संत अनंत जन मन रंजनं।
नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि खल दल गंजनं॥2॥

आप अपरिमित बलवाले हैं, अनादि, अजन्मा, अव्यक्त (निराकार), एक अगोचर (अलक्ष्य), गोविंद (वेद वाक्यों द्वारा जानने योग्य), इंद्रियों से अतीत, (जन्म-मरण, सुख-दुःख, हर्ष-शोकादि) द्वंद्वों को हरने वाले, विज्ञान की घनमूर्ति और पृथ्वी के आधार हैं तथा जो संत राम मंत्र को जपते हैं, उन अनन्त सेवकों के मन को आनंद देने वाले हैं। उन निष्कामप्रिय (निष्कामजनों के प्रेमी अथवा उन्हें प्रिय) तथा काम आदि दुष्टों (दुष्ट वृत्तियों) के दल का दलन करने वाले श्री रामजी को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ॥2॥

जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म ब्यापक बिरज अज कहि गावहीं।
करि ध्यान ग्यान बिराग जोग अनेक मुनि जेहि पावहीं॥
सो प्रगट करुना कंद सोभा बृंद अग जग मोहई।
मम हृदय पंकज भृंग अंग अनंग बहु छबि सोहई॥3॥

जिनको श्रुतियाँ निरंजन (माया से परे), ब्रह्म, व्यापक, निर्विकार और जन्मरहित कहकर गान करती हैं। मुनि जिन्हें ध्यान, ज्ञान, वैराग्य और योग आदि अनेक साधन करके पाते हैं। वे ही करुणाकन्द, शोभा के समूह (स्वयं श्री भगवान्) प्रकट होकर जड़-चेतन समस्त जगत् को मोहित कर रहे हैं। मेरे हृदय कमल के भ्रमर रूप उनके अंग-अंग में बहुत से कामदेवों की छवि शोभा पा रही है॥3॥

जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा।
पस्यंति जं जोगी जतन करि करत मन गो बस सदा॥
सो राम रमा निवास संतत दास बस त्रिभुवन धनी।
मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी॥4॥

जो अगम और सुगम हैं, निर्मल स्वभाव हैं, विषम और सम हैं और सदा शीतल (शांत) हैं। मन और इंद्रियों को सदा वश में करते हुए योगी बहुत साधन करने पर जिन्हें देख पाते हैं। वे तीनों लोकों के स्वामी, रमानिवास श्री रामजी निरंतर अपने दासों के वश में रहते हैं। वे ही मेरे हृदय में निवास करें, जिनकी पवित्र कीर्ति आवागमन को मिटाने वाली है॥4॥

दोहा :

अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम॥32॥

अखंड भक्ति का वर माँगकर गृध्रराज जटायु श्री हरि के परमधाम को चला गया। श्री रामचंद्रजी ने उसकी (दाहकर्म आदि सारी) क्रियाएँ यथायोग्य अपने हाथों से कीं॥32॥

चौपाई :

कोमल चित अति दीनदयाला। कारन बिनु रघुनाथ कृपाला॥
गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्ही जो जाचत जोगी॥1॥

श्री रघुनाथजी अत्यंत कोमल चित्त वाले, दीनदयालु और बिना ही करण कृपालु हैं। गीध (पक्षियों में भी) अधम पक्षी और मांसाहारी था, उसको भी वह दुर्लभ गति दी, जिसे योगीजन माँगते रहते हैं॥1॥

सुनहू उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी।
पुनि सीतहि खोजत द्वौ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई॥2॥

(शिवजी कहते हैं-) हे पार्वती! सुनो, वे लोग अभागे हैं, जो भगवान्‌ को छोड़कर विषयों से अनुराग करते हैं। फिर दोनों भाई सीताजी को खोजते हुए आगे चले। वे वन की सघनता देखते जाते हैं॥2॥

संकुल लता बिटप घन कानन। बहु खग मृग तहँ गज पंचानन॥
आवत पंथ कबंध निपाता। तेहिं सब कही साप कै बाता॥3॥

वह सघन वन लताओं और वृक्षों से भरा है। उसमें बहुत से पक्षी, मृग, हाथी और सिंह रहते हैं। श्री रामजी ने रास्ते में आते हुए कबंध राक्षस को मार डाला। उसने अपने शाप की सारी बात कही॥3॥

दुरबासा मोहि दीन्ही सापा। प्रभु पद पेखि मिटा सो पापा॥
सुनु गंधर्ब कहउँ मैं तोही। मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल द्रोही॥4॥

(वह बोला-) दुर्वासाजी ने मुझे शाप दिया था। अब प्रभु के चरणों को देखने से वह पाप मिट गया। (श्री रामजी ने कहा-) हे गंधर्व! सुनो, मैं तुम्हें कहता हूँ, ब्राह्मणकुल से द्रोह करने वाला मुझे नहीं सुहाता॥4॥

दोहा :

मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताकें सब देव॥33॥

मन, वचन और कर्म से कपट छोड़कर जो भूदेव ब्राह्मणों की सेवा करता है, मुझ समेत ब्रह्मा, शिव आदि सब देवता उसके वश हो जाते हैं॥33॥

चौपाई :

सापत ताड़त परुष कहंता। बिप्र पूज्य अस गावहिं संता॥
पूजिअ बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना॥1॥

शाप देता हुआ, मारता हुआ और कठोर वचन कहता हुआ भी ब्राह्मण पूजनीय है, ऐसा संत कहते हैं। शील और गुण से हीन भी ब्राह्मण पूजनीय है। और गुण गणों से युक्त और ज्ञान में निपुण भी शूद्र पूजनीय नहीं है॥1॥

कहि निज धर्म ताहि समुझावा। निज पद प्रीति देखि मन भावा॥
रघुपति चरन कमल सिरु नाई। गयउ गगन आपनि गति पाई॥2॥

श्री रामजी ने अपना धर्म (भागवत धर्म) कहकर उसे समझाया। अपने चरणों में प्रेम देखकर वह उनके मन को भाया। तदनन्तर श्री रघुनाथजी के चरणकमलों में सिर नवाकर वह अपनी गति (गंधर्व का स्वरूप) पाकर आकाश में चला गया॥2॥

ताहि देइ गति राम उदारा। सबरी कें आश्रम पगु धारा॥
सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के बचन समुझि जियँ भाए॥3॥

उदार श्री रामजी उसे गति देकर शबरीजी के आश्रम में पधारे। शबरीजी ने श्री रामचंद्रजी को घर में आए देखा, तब मुनि मतंगजी के वचनों को याद करके उनका मन प्रसन्न हो गया॥3॥

सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई॥4॥

कमल सदृश नेत्र और विशाल भुजाओं वाले, सिर पर जटाओं का मुकुट और हृदय पर वनमाला धारण किए हुए सुंदर, साँवले और गोरे दोनों भाइयों के चरणों में शबरीजी लिपट पड़ीं॥4॥

प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा॥
सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे॥5॥

वे प्रेम में मग्न हो गईं, मुख से वचन नहीं निकलता। बार-बार चरण-कमलों में सिर नवा रही हैं। फिर उन्होंने जल लेकर आदरपूर्वक दोनों भाइयों के चरण धोए और फिर उन्हें सुंदर आसनों पर बैठाया॥5॥

दोहा :

कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि॥34॥

उन्होंने अत्यंत रसीले और स्वादिष्ट कन्द, मूल और फल लाकर श्री रामजी को दिए। प्रभु ने बार-बार प्रशंसा करके उन्हें प्रेम सहित खाया॥34॥

चौपाई :

पानि जोरि आगें भइ ठाढ़ी। प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी॥
केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी॥1॥

फिर वे हाथ जोड़कर आगे खड़ी हो गईं। प्रभु को देखकर उनका प्रेम अत्यंत बढ़ गया। (उन्होंने कहा-) मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ? मैं नीच जाति की और अत्यंत मूढ़ बुद्धि हूँ॥1॥

अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता॥2॥

जो अधम से भी अधम हैं, स्त्रियाँ उनमें भी अत्यंत अधम हैं, और उनमें भी हे पापनाशन! मैं मंदबुद्धि हूँ। श्री रघुनाथजी ने कहा- हे भामिनि! मेरी बात सुन! मैं तो केवल एक भक्ति ही का संबंध मानता हूँ॥2॥

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥3॥

जाति, पाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता- इन सबके होने पर भी भक्ति से रहित मनुष्य कैसा लगता है, जैसे जलहीन बादल (शोभाहीन) दिखाई पड़ता है॥3॥

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं॥
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥4॥

मैं तुझसे अब अपनी नवधा भक्ति कहता हूँ। तू सावधान होकर सुन और मन में धारण कर। पहली भक्ति है संतों का सत्संग। दूसरी भक्ति है मेरे कथा प्रसंग में प्रेम॥4॥

दोहा :

गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥35॥

तीसरी भक्ति है अभिमानरहित होकर गुरु के चरण कमलों की सेवा और चौथी भक्ति यह है कि कपट छोड़कर मेरे गुण समूहों का गान करें॥35॥

चौपाई :

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा॥1॥

मेरे (राम) मंत्र का जाप और मुझमें दृढ़ विश्वास- यह पाँचवीं भक्ति है, जो वेदों में प्रसिद्ध है। छठी भक्ति है इंद्रियों का निग्रह, शील (अच्छा स्वभाव या चरित्र), बहुत कार्यों से वैराग्य और निरंतर संत पुरुषों के धर्म (आचरण) में लगे रहना॥1॥

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥

आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा॥2॥

सातवीं भक्ति है जगत्‌ भर को समभाव से मुझमें ओतप्रोत (राममय) देखना और संतों को मुझसे भी अधिक करके मानना। आठवीं भक्ति है जो कुछ मिल जाए, उसी में संतोष करना और स्वप्न में भी पराए दोषों को न देखना॥2॥

नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना॥
नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरुष सचराचर कोई॥3॥

नवीं भक्ति है सरलता और सबके साथ कपटरहित बर्ताव करना, हृदय में मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्था में हर्ष और दैन्य (विषाद) का न होना। इन नवों में से जिनके एक भी होती है, वह स्त्री-पुरुष, जड़-चेतन कोई भी हो-॥3॥

सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें॥
जोगि बृंद दुरलभ गति जोई। तो कहुँ आजु सुलभ भइ सोई॥4॥

हे भामिनि! मुझे वही अत्यंत प्रिय है। फिर तुझ में तो सभी प्रकार की भक्ति दृढ़ है। अतएव जो गति योगियों को भी दुर्लभ है, वही आज तेरे लिए सुलभ हो गई है॥4॥

मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा॥
जनकसुता कइ सुधि भामिनी। जानहि कहु करिबरगामिनी॥5॥

मेरे दर्शन का परम अनुपम फल यह है कि जीव अपने सहज स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। हे भामिनि! अब यदि तू गजगामिनी जानकी की कुछ खबर जानती हो तो बता॥5॥

पंपा सरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई॥
सो सब कहिहि देव रघुबीरा। जानतहूँ पूछहु मतिधीरा॥6॥

(शबरी ने कहा-) हे रघुनाथजी! आप पंपा नामक सरोवर को जाइए। वहाँ आपकी सुग्रीव से मित्रता होगी। हे देव! हे रघुवीर! वह सब हाल बतावेगा। हे धीरबुद्धि! आप सब जानते हुए भी मुझसे पूछते हैं!॥6॥

बार बार प्रभु पद सिरु नाई। प्रेम सहित सब कथा सुनाई॥7॥

बार-बार प्रभु के चरणों में सिर नवाकर, प्रेम सहित उसने सब कथा सुनाई॥7॥

छंद- :

कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख हृदय पद पंकज धरे।
तजि जोग पावक देह परि पद लीन भइ जहँ नहिं फिरे॥
नर बिबिध कर्म अधर्म बहु मत सोकप्रद सब त्यागहू।
बिस्वास करि कह दास तुलसी राम पद अनुरागहू॥

सब कथा कहकर भगवान् के मुख के दर्शन कर, उनके चरणकमलों को धारण कर लिया और योगाग्नि से देह को त्याग कर (जलाकर) वह उस दुर्लभ हरिपद में लीन हो गई, जहाँ से लौटना नहीं होता। तुलसीदासजी कहते हैं कि अनेकों प्रकार के कर्म, अधर्म और बहुत से मत- ये सब शोकप्रद हैं, हे मनुष्यों! इनका त्याग कर दो और विश्वास करके श्री रामजी के चरणों में प्रेम करो।

दोहा :

जाति हीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि।
महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि॥36॥

जो नीच जाति की और पापों की जन्मभूमि थी, ऐसी स्त्री को भी जिन्होंने मुक्त कर दिया, अरे महादुर्बुद्धि मन! तू ऐसे प्रभु को भूलकर सुख चाहता है?॥36॥

चौपाई :

चले राम त्यागा बन सोऊ। अतुलित बल नर केहरि दोऊ॥
बिरही इव प्रभु करत बिषादा। कहत कथा अनेक संबादा॥1॥

श्री रामचंद्रजी ने उस वन को भी छोड़ दिया और वे आगे चले। दोनों भाई अतुलनीय बलवान् और मनुष्यों में सिंह के समान हैं। प्रभु विरही की तरह विषाद करते हुए अनेकों कथाएँ और संवाद कहते हैं-॥1॥

लछिमन देखु बिपिन कइ सोभा। देखत केहि कर मन नहिं छोभा॥
नारि सहित सब खग मृग बृंदा। मानहुँ मोरि करत हहिं निंदा॥2॥

हे लक्ष्मण! जरा वन की शोभा तो देखो। इसे देखकर किसका मन क्षुब्ध नहीं होगा? पक्षी और पशुओं के समूह सभी स्त्री सहित हैं। मानो वे मेरी निंदा कर रहे हैं॥3॥

हमहि देखि मृग निकर पराहीं। मृगीं कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं॥
तुम्ह आनंद करहु मृग जाए। कंचन मृग खोजन ए आए॥3॥

हमें देखकर (जब डर के मारे) हिरनों के झुंड भागने लगते हैं, तब हिरनियाँ उनसे कहती हैं- तुमको भय नहीं है। तुम तो साधारण हिरनों से पैदा हुए हो, अतः तुम आनंद करो। ये तो सोने का हिरन खोजने आए हैं॥3॥

संग लाइ करिनीं करि लेहीं। मानहुँ मोहि सिखावनु देहीं॥
सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ। भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ॥4॥

हाथी हथिनियों को साथ लगा लेते हैं। वे मानो मुझे शिक्षा देते हैं (कि स्त्री को कभी अकेली नहीं छोड़ना चाहिए)। भलीभाँति चिंतन किए हुए शास्त्र को भी बार-बार देखते रहना चाहिए।

अच्छी तरह सेवा किए हुए भी राजा को वश में नहीं समझना चाहिए॥4॥

राखिअ नारि जदपि उर माहीं। जुबती सास्त्र नृपति बस नाहीं॥
देखहु तात बसंत सुहावा। प्रिया हीन मोहि भय उपजावा॥5॥

और स्त्री को चाहे हृदय में ही क्यों न रखा जाए, परन्तु युवती स्त्री, शास्त्र और राजा किसी के वश में नहीं रहते। हे तात! इस सुंदर वसंत को तो देखो। प्रिया के बिना मुझको यह भय उत्पन्न कर रहा है॥5॥

दोहा :

बिरह बिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल।
सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल॥37 क॥

मुझे विरह से व्याकुल, बलहीन और बिलकुल अकेला जानकर कामदेव ने वन, भौंरों और पक्षियों को साथ लेकर मुझ पर धावा बोल दिया॥37 (क)॥

देखि गयउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात।
डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब कटकु हटकि मनजात॥37 ख॥

परन्तु जब उसका दूत यह देख गया कि मैं भाई के साथ हूँ (अकेला नहीं हूँ), तब उसकी बात सुनकर कामदेव ने मानो सेना को रोककर डेरा डाल दिया है॥37 (ख)॥

चौपाई :

बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिए जनु तानी॥
कदलि ताल बर धुजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका॥1॥

विशाल वृक्षों में लताएँ उलझी हुई ऐसी मालूम होती हैं मानो नाना प्रकार के तंबू तान दिए गए हैं। केला और ताड़ सुंदर ध्वजा पताका के समान हैं। इन्हें देखकर वही नहीं मोहित होता, जिसका मन धीर है॥1॥

बिबिध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना॥
कहुँ कहुँ सुंदर बिटप सुहाए। जनु भट बिलग बिलग होइ छाए॥2॥

अनेकों वृक्ष नाना प्रकार से फूले हुए हैं। मानो अलग-अलग बाना (वर्दी) धारण किए हुए बहुत से तीरंदाज हों। कहीं-कहीं सुंदर वृक्ष शोभा दे रहे हैं। मानो योद्धा लोग अलग-अलग होकर छावनी डाले हों॥2॥

कूजत पिक मानहुँ गज माते। ढेक महोख ऊँट बिसराते॥
मोर चकोर कीर बर बाजी। पारावत मराल सब ताजी॥3॥

कोयलें कूज रही हैं, वही मानो मतवाले हाथी (चिग्घाड़ रहे) हैं। ढेक और महोख पक्षी मानो ऊँट

और खच्चर हैं। मोर, चकोर, तोते, कबूतर और हंस मानो सब सुंदर ताजी (अरबी) घोड़े हैं॥3॥

तीतिर लावक पदचर जूथा। बरनि न जाइ मनोज बरूथा॥
रथ गिरि सिला दुंदुभीं झरना। चातक बंदी गुन गन बरना॥4॥

तीतर और बटेर पैदल सिपाहियों के झुंड हैं। कामदेव की सेना का वर्णन नहीं हो सकता। पर्वतों की शिलाएँ रथ और जल के झरने नगाड़े हैं। पपीहे भाट हैं, जो गुणसमूह (विरुदावली) का वर्णन करते हैं॥4॥

मधुकर मुखर भेरि सहनाई। त्रिबिध बयारि बसीठीं आई॥
चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हें। बिचरत सबहि चुनौती दीन्हें॥5॥

भौंरों की गुंजार भेरी और शहनाई है। शीतल, मंद और सुगंधित हवा मानो दूत का काम लेकर आई है। इस प्रकार चतुरंगिणी सेना साथ लिए कामदेव मानो सबको चुनौती देता हुआ विचर रहा है॥5॥

लछिमन देखत काम अनीका। रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका॥
ऐहि कें एक परम बल नारी। तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी॥6॥

हे लक्ष्मण! कामदेव की इस सेना को देखकर जो धीर बने रहते हैं, जगत् में उन्हीं की (वीरों में) प्रतिष्ठा होती है। इस कामदेव के एक स्त्री का बड़ा भारी बल है। उससे जो बच जाए, वही श्रेष्ठ योद्धा है॥6॥

दोहा :

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ॥38 क॥

हे तात! काम, क्रोध और लोभ- ये तीन अत्यंत दुष्ट हैं। ये विज्ञान के धाम मुनियों के भी मनों को पलभर में क्षुब्ध कर देते हैं॥38 (क)॥

लोभ कें इच्छा दंभ बल काम कें केवल नारि।
क्रोध कें परुष बचन बल मुनिबर कहहिं बिचारि॥38 ख॥

लोभ को इच्छा और दम्भ का बल है, काम को केवल स्त्री का बल है और क्रोध को कठोर वचनों का बाल है, श्रेष्ठ मुनि विचार कर ऐसा कहते हैं॥38 (ख)॥

चौपाई :

गुनातीत सचराचर स्वामी। राम उमा सब अंतरजामी॥
कामिन्ह कै दीनता देखाई। धीरन्ह कें मन बिरति दृढ़ाई॥1॥

(शिवजी कहते हैं-) हे पार्वती! श्री रामचंद्रजी गुणातीत (तीनों गुणों से परे), चराचर जगत् के

स्वामी और सबके अंतर की जानने वाले हैं। (उपर्युक्त बातें कहकर) उन्होंने कामी लोगों की दीनता (बेबसी) दिखलाई है और धीर (विवेकी) पुरुषों के मन में वैराग्य को दृढ़ किया है॥1॥

क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहिं सकल राम कीं दाया॥
सो नर इंद्रजाल नहिं भूला। जा पर होइ सो नट अनुकूला॥2॥

क्रोध, काम, लोभ, मद और माया- ये सभी श्री रामजी की दया से छूट जाते हैं। वह नट (नटराज भगवान्) जिस पर प्रसन्न होता है, वह मनुष्य इंद्रजाल (माया) में नहीं भूलता॥2॥

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना॥
पुनि प्रभु गए सरोबर तीरा। पंपा नाम सुभग गंभीरा॥3॥

हे उमा! मैं तुम्हें अपना अनुभव कहता हूँ- हरि का भजन ही सत्य है, यह सारा जगत् तो स्वप्न (की भाँति झूठा) है। फिर प्रभु श्री रामजी पंपा नामक सुंदर और गहरे सरोवर के तीर पर गए॥3॥

संत हृदय जस निर्मल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी॥
जहँ तहँ पिअहिं बिबिध मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा॥4॥

उसका जल संतों के हृदय जैसा निर्मल है। मन को हरने वाले सुंदर चार घाट बँधे हुए हैं। भाँति-भाँति के पशु जहाँ-तहाँ जल पी रहे हैं। मानो उदार दानी पुरुषों के घर याचकों की भीड़ लगी हो!॥4॥

दोहा :

पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म।
मायाछन्न न देखिऐ जैसें निर्गुन ब्रह्म॥39 क॥

घनी पुरइनों (कमल के पत्तों) की आड़ में जल का जल्दी पता नहीं मिलता। जैसे माया से ढँके रहने के कारण निर्गुण ब्रह्म नहीं दिखता॥39 (क)॥

सुखी मीन सब एकरस अति अगाध जल माहिं।
जथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख संजुत जाहिं॥39 ख॥

उस सरोवर के अत्यंत अथाह जल में सब मछलियाँ सदा एकरस (एक समान) सुखी रहती हैं। जैसे धर्मशील पुरुषों के सब दिन सुखपूर्वक बीतते हैं॥39 (ख)॥

चौपाई :

बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा॥
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा॥1॥

उसमें रंग-बिरंगे कमल खिले हुए हैं। बहुत से भौंरे मधुर स्वर से गुंजार कर रहे हैं। जल के

मुर्गे और राजहंस बोल रहे हैं, मानो प्रभु को देखकर उनकी प्रशंसा कर रहे हों॥1॥

चक्रबाक बक खग समुदाई। देखत बनइ बरनि नहिं जाई॥
सुंदर खग गन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बोलाई॥2॥

चक्रवाक, बगुले आदि पक्षियों का समुदाय देखते ही बनता है, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। सुंदर पक्षियों की बोली बड़ी सुहावनी लगती है, मानो (रास्ते में) जाते हुए पथिक को बुलाए लेती हो॥2॥

ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए। चहु दिसि कानन बिटप सुहाए॥
चंपक बकुल कदंब तमाला। पाटल पनस परास रसाला॥3॥

उस झील (पंपा सरोवर) के समीप मुनियों ने आश्रम बना रखे हैं। उसके चारों ओर वन के सुंदर वृक्ष हैं। चम्पा, मौलसिरी, कदम्ब, तमाल, पाटल, कटहल, ढाक और आम आदि-॥3॥

नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरीक पटली कर गाना॥
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ। संतत बहइ मनोहर बाऊ॥4॥

बहुत प्रकार के वृक्ष नए-नए पत्तों और (सुगंधित) पुष्पों से युक्त हैं, (जिन पर) भौंरों के समूह गुंजार कर रहे हैं। स्वभाव से ही शीतल, मंद, सुगंधित एवं मन को हरने वाली हवा सदा बहती रहती है॥4॥

कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं॥5॥

कोयलें 'कुहू' 'कुहू' का शब्द कर रही हैं। उनकी रसीली बोली सुनकर मुनियों का भी ध्यान टूट जाता है॥5॥

दोहा :

फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निअराइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ॥40॥

फलों के बोझ से झुककर सारे वृक्ष पृथ्वी के पास आ लगे हैं, जैसे परोपकारी पुरुष बड़ी सम्पत्ति पाकर (विनय से) झुक जाते हैं॥40॥

चौपाई :

देखि राम अति रुचिर तलावा। मज्जनु कीन्ह परम सुख पावा॥
देखी सुंदर तरुबर छाया। बैठे अनुज सहित रघुराया॥1॥

श्री रामजी ने अत्यंत सुंदर तालाब देखकर स्नान किया और परम सुख पाया। एक सुंदर उत्तम वृक्ष की छाया देखकर श्री रघुनाथजी छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित बैठ गए॥1॥

तहँ पुनि सकल देव मुनि आए। अस्तुति करि निज धाम सिधाए॥

बैठे परम प्रसन्न कृपाला। कहत अनुज सन कथा रसाला॥2॥

फिर वहाँ सब देवता और मुनि आए और स्तुति करके अपने-अपने धाम को चले गए। कृपालु श्री रामजी परम प्रसन्न बैठे हुए छोटे भाई लक्ष्मणजी से रसीली कथाएँ कह रहे हैं॥2॥

बिरहवंत भगवंतहि देखी। नारद मन भा सोच बिसेषी॥
मोर साप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा॥3॥

भगवान् को विरहयुक्त देखकर नारदजी के मन में विशेष रूप से सोच हुआ। (उन्होंने विचार किया कि) मेरे ही शाप को स्वीकार करके श्री रामजी नाना प्रकार के दुःखों का भार सह रहे हैं (दुःख उठा रहे हैं)॥3॥

ऐसे प्रभुहि बिलोकउँ जाई। पुनि न बनिहि अस अवसरु आई॥
यह बिचारि नारद कर बीना। गए जहाँ प्रभु सुख आसीना॥4॥

ऐसे (भक्त वत्सल) प्रभु को जाकर देखूँ। फिर ऐसा अवसर न बन आवेगा। यह विचार कर नारदजी हाथ में वीणा लिए हुए वहाँ गए, जहाँ प्रभु सुखपूर्वक बैठे हुए थे॥4॥

गावत राम चरित मृदु बानी। प्रेम सहित बहु भाँति बखानी॥
करत दंडवत लिए उठाई। राखे बहुत बार उर लाई॥5॥

वे कोमल वाणी से प्रेम के साथ बहुत प्रकार से बखान-बखान कर रामचरित का गान कर (ते हुए चले आ) रहे थे। दण्डवत् करते देखकर श्री रामचंद्रजी ने नारदजी को उठा लिया और बहुत देर तक हृदय से लगाए रखा॥5॥

स्वागत पूँछि निकट बैठारे। लछिमन सादर चरन पखारे॥6॥

फिर स्वागत (कुशल) पूछकर पास बैठा लिया। लक्ष्मणजी ने आदर के साथ उनके चरण धोए॥6॥

दोहा :

नाना बिधि बिनती करि प्रभु प्रसन्न जियँ जानि।
नारद बोले बचन तब जोरि सरोरुह पानि॥41॥

बहुत प्रकार से विनती करके और प्रभु को मन में प्रसन्न जानकर तब नारदजी कमल के समान हाथों को जोड़कर वचन बोले-॥41॥

चौपाई :

सुनहु उदार सहज रघुनायक। सुंदर अगम सुगम बर दायक॥
देहु एक बर मागउँ स्वामी। जद्यपि जानत अंतरजामी॥1॥

हे स्वभाव से ही उदार श्री रघुनाथजी! सुनिए। आप सुंदर अगम और सुगम वर के देने वाले हैं।

हे स्वामी! मैं एक वर माँगता हूँ, वह मुझे दीजिए, यद्यपि आप अंतर्यामी होने के नाते सब जानते ही हैं॥1॥

जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ। जन सन कबहुँ कि करऊँ दुराऊ॥
कवन बस्तु असि प्रिय मोहि लागी। जो मुनिबर न सकहुँ तुम्ह मागी॥2॥

(श्री रामजी ने कहा-) हे मुनि! तुम मेरा स्वभाव जानते ही हो। क्या मैं अपने भक्तों से कभी कुछ छिपाव करता हूँ? मुझे ऐसी कौन सी वस्तु प्रिय लगती है, जिसे हे मुनिश्रेष्ठ! तुम नहीं माँग सकते?॥2॥

जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरें। अस बिस्वास तजहु जनि भोरें॥
तब नारद बोले हरषाई। अस बर मागउँ करउँ ढिठाई॥3॥

मुझे भक्त के लिए कुछ भी अदेय नहीं है। ऐसा विश्वास भूलकर भी मत छोड़ो। तब नारदजी हर्षित होकर बोले- मैं ऐसा वर माँगता हूँ, यह धृष्टता करता हूँ-॥3॥

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक तें एका॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥4॥

यद्यपि प्रभु के अनेकों नाम हैं और वेद कहते हैं कि वे सब एक से एक बढ़कर हैं, तो भी हे नाथ! रामनाम सब नामों से बढ़कर हो और पाप रूपी पक्षियों के समूह के लिए यह वधिक के समान हो॥4॥

दोहा :

राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडगन बिमल बसहुँ भगत उर ब्योम॥42 क॥

आपकी भक्ति पूर्णिमा की रात्रि है, उसमें 'राम' नाम यही पूर्ण चंद्रमा होकर और अन्य सब नाम तारागण होकर भक्तों के हृदय रूपी निर्मल आकाश में निवास करें॥42 (क)॥

एवमस्तु मुनि सन कहेउ कृपासिंधु रघुनाथ।
तब नारद मन हरष अति प्रभु पद नायउ माथ॥42 ख॥

कृपा सागर श्री रघुनाथजी ने मुनि से 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहा। तब नारदजी ने मन में अत्यंत हर्षित होकर प्रभु के चरणों में मस्तक नवाया॥42 (ख)॥

चौपाई :

अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी। पुनि नारद बोले मृदु बानी॥
राम जबहिं प्रेरेउ निज माया मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया॥1॥

श्री रघुनाथजी को अत्यंत प्रसन्न जानकर नारदजी फिर कोमल वाणी बोले- हे रामजी! हे

रघुनाथजी! सुनिए, जब आपने अपनी माया को प्रेरित करके मुझे मोहित किया था,॥1॥

तब बिबाह मैं चाहउँ कीन्हा। प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा॥
सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥2॥

तब मैं विवाह करना चाहता था। हे प्रभु! आपने मुझे किस कारण विवाह नहीं करने दिया? (प्रभु बोले-) हे मुनि! सुनो, मैं तुम्हें हर्ष के साथ कहता हूँ कि जो समस्त आशा-भरोसा छोड़कर केवल मुझको ही भजते हैं,॥2॥

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखइ जननी अरगाई॥3॥

मैं सदा उनकी वैसे ही रखवाली करता हूँ, जैसे माता बालक की रक्षा करती है। छोटा बच्चा जब दौड़कर आग और साँप को पकड़ने जाता है, तो वहाँ माता उसे (अपने हाथों) अलग करके बचा लेती है॥3॥

प्रौढ़ भएँ तेहि सुत पर माता। प्रीति करइ नहिं पाछिलि बाता॥
मोरें प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी॥4॥

सयाना हो जाने पर उस पुत्र पर माता प्रेम तो करती है, परन्तु पिछली बात नहीं रहती (अर्थात् मातृ परायण शिशु की तरह फिर उसको बचाने की चिंता नहीं करती, क्योंकि वह माता पर निर्भर न कर अपनी रक्षा आप करने लगता है)। ज्ञानी मेरे प्रौढ़ (सयाने) पुत्र के समान है और (तुम्हारे जैसा) अपने बल का मान न करने वाला सेवक मेरे शिशु पुत्र के समान है॥4॥

जनहि मोर बल निज बल ताही। दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही॥
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं। पाएहुँ ग्यान भगति नहिं तजहीं॥5॥

मेरे सेवक को केवल मेरा ही बल रहता है और उसे (ज्ञानी को) अपना बल होता है। पर काम-क्रोध रूपी शत्रु तो दोनों के लिए हैं।(भक्त के शत्रुओं को मारने की जिम्मेवारी मुझ पर रहती है, क्योंकि वह मेरे परायण होकर मेरा ही बल मानता है, परन्तु अपने बल को मानने वाले ज्ञानी के शत्रुओं का नाश करने की जिम्मेवारी मुझ पर नहीं है।) ऐसा विचार कर पंडितजन (बुद्धिमान लोग) मुझको ही भजते हैं। वे ज्ञान प्राप्त होने पर भी भक्ति को नहीं छोड़ते॥5॥

दोहा :

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि॥43॥

काम, क्रोध, लोभ और मद आदि मोह (अज्ञान) की प्रबल सेना है। इनमें मायारूपिणी (माया की साक्षात् मूर्ति) स्त्री तो अत्यंत दारुण दुःख देने वाली है॥43॥

चौपाई :

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता। मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता॥
जप तप नेम जलाश्रय झारी। होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी॥1

हे मुनि! सुनो, पुराण, वेद और संत कहते हैं कि मोह रूपी वन (को विकसित करने) के लिए स्त्री वसंत ऋतु के समान है। जप, तप, नियम रूपी संपूर्ण जल के स्थानों को स्त्री ग्रीष्म रूप होकर सर्वथा सोख लेती है॥1॥

काम क्रोध मद मत्सर भेका। इन्हहि हरषप्रद बरषा एका॥
दुर्बासना कुमुद समुदाई। तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई॥2॥

काम, क्रोध, मद और मत्सर (डाह) आदि मेंढक हैं। इनको वर्षा ऋतु होकर हर्ष प्रदान करने वाली एकमात्र यही (स्त्री) है। बुरी वासनाएँ कुमुदों के समूह हैं। उनको सदैव सुख देने वाली यह शरद् ऋतु है॥2॥

धर्म सकल सरसीरुह बृंदा। होइ हिम तिन्हहि दहइ सुख मंदा॥
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई॥3॥

समस्त धर्म कमलों के झुंड हैं। यह नीच (विषयजन्य) सुख देने वाली स्त्री हिमऋतु होकर उन्हें जला डालती है। फिर ममतारूपी जवास का समूह (वन) स्त्री रूपी शिशिर ऋतु को पाकर हरा-भरा हो जाता है॥3॥

पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड़ रजनी अँधियारी॥
बुधि बल सील सत्य सब मीना। बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना॥4॥

पाप रूपी उल्लुओं के समूह के लिए यह स्त्री सुख देने वाली घोर अंधकारमयी रात्रि है। बुद्धि, बल, शील और सत्य- ये सब मछलियाँ हैं और उन (को फँसाकर नष्ट करने) के लिए स्त्री बंसी के समान है, चतुर पुरुष ऐसा कहते हैं॥4॥

दोहा :

अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जियँ जानि॥44॥

युवती स्त्री अवगुणों की मूल, पीड़ा देने वाली और सब दुःखों की खान है, इसलिए हे मुनि! मैंने जी में ऐसा जानकर तुमको विवाह करने से रोका था॥44॥

चौपाई :

सुनि रघुपति के बचन सुहाए। मुनि तन पुलक नयन भरि आए॥
कहहु कवन प्रभु कै असि रीती। सेवक पर ममता अरु प्रीती॥1॥

श्री रघुनाथजी के सुंदर वचन सुनकर मुनि का शरीर पुलकित हो गया और नेत्र (प्रेमाश्रुओं के जल से) भर आए। (वे मन ही मन कहने लगे-) कहो तो किस प्रभु की ऐसी रीती है, जिसका सेवक पर इतना ममत्व और प्रेम हो॥1॥

जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी। ग्यान रंक नर मंद अभागी॥
पुनि सादर बोले मुनि नारद। सुनहु राम बिग्यान बिसारद॥2॥

जो मनुष्य भ्रम को त्यागकर ऐसे प्रभु को नहीं भजते, वे ज्ञान के कंगाल, दुर्बुद्धि और अभागे हैं। फिर नारद मुनि आदर सहित बोले- हे विज्ञान-विशारद श्री रामजी! सुनिए-॥2॥

संतन्ह के लच्छन रघुबीरा। कहहु नाथ भव भंजन भीरा॥
सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ। जिन्ह ते मैं उन्ह कें बस रहऊँ॥3॥

हे रघुवीर! हे भव-भय (जन्म-मरण के भय) का नाश करने वाले मेरे नाथ! अब कृपा कर संतों के लक्षण कहिए! (श्री रामजी ने कहा-) हे मुनि! सुनो, मैं संतों के गुणों को कहता हूँ, जिनके कारण मैं उनके वश में रहता हूँ॥3॥

षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुखधामा॥
अमित बोध अनीह मितभोगी। सत्यसार कबि कोबिद जोगी॥4॥

वे संत (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर- इन) छह विकारों (दोषों) को जीते हुए, पापरहित, कामनारहित, निश्चल (स्थिरबुद्धि), अकिंचन (सर्वत्यागी), बाहर-भीतर से पवित्र, सुख के धाम, असीम ज्ञानवान्, इच्छारहित, मिताहारी, सत्यनिष्ठ, कवि, विद्वान, योगी,॥4॥

सावधान मानद मदहीना। धीर धर्म गति परम प्रबीना॥5॥

सावधान, दूसरों को मान देने वाले, अभिमानरहित, धैर्यवान, धर्म के ज्ञान और आचरण में अत्यंत निपुण,॥5॥

दोहा :

गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह॥45॥

गुणों के घर, संसार के दुःखों से रहित और संदेहों से सर्वथा छूटे हुए होते हैं। मेरे चरण कमलों को छोड़कर उनको न देह ही प्रिय होती है, न घर ही॥45॥

चौपाई :

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ सबहि सन प्रीति॥1॥

कानों से अपने गुण सुनने में सकुचाते हैं, दूसरों के गुण सुनने से विशेष हर्षित होते हैं। सम

और शीतल हैं, न्याय का कभी त्याग नहीं करते। सरल स्वभाव होते हैं और सभी से प्रेम रखते हैं॥1॥

जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोबिंद बिप्र पद प्रेमा॥
श्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया॥2॥

वे जप, तप, व्रत, दम, संयम और नियम में रत रहते हैं और गुरु, गोविंद तथा ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम रखते हैं। उनमें श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, दया, मुदिता (प्रसन्नता) और मेरे चरणों में निष्कपट प्रेम होता है॥2॥

बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥3॥

तथा वैराग्य, विवेक, विनय, विज्ञान (परमात्मा के तत्व का ज्ञान) और वेद-पुराण का यथार्थ ज्ञान रहता है। वे दम्भ, अभिमान और मद कभी नहीं करते और भूलकर भी कुमार्ग पर पैर नहीं रखते॥3॥

गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत सीला॥
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते। कहि न सकहिं सादर श्रुति तेते॥4॥

सदा मेरी लीलाओं को गाते-सुनते हैं और बिना ही कारण दूसरों के हित में लगे रहने वाले होते हैं। हे मुनि! सुनो, संतों के जितने गुण हैं, उनको सरस्वती और वेद भी नहीं कह सकते॥4॥

छंद :

कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पंकज गहे।
अस दीनबंधु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे॥
सिरु नाइ बारहिं बार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गए।
ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि रँग रँए॥

'शेष और शारदा भी नहीं कह सकते' यह सुनते ही नारदजी ने श्री रामजी के चरणकमल पकड़ लिए। दीनबंधु कृपालु प्रभु ने इस प्रकार अपने श्रीमुख से अपने भक्तों के गुण कहे। भगवान् के चरणों में बार-बार सिर नवाकर नारदजी ब्रह्मलोक को चले गए। तुलसीदासजी कहते हैं कि वे पुरुष धन्य हैं, जो सब आशा छोड़कर केवल श्री हरि के रंग में रँग गए हैं।

दोहा :

रावनारि जसु पावन गावहिं सुनहिं जे लोग।
राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग॥46 क॥

जो लोग रावण के शत्रु श्री रामजी का पवित्र यश गावेंगे और सुनेंगे, वे वैराग्य, जप और योग

के बिना ही श्री रामजी की दृढ़ भक्ति पावेंगे॥46 (क)॥

दीप सिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग॥46 ख॥

युवती स्त्रियों का शरीर दीपक की लौ के समान है, हे मन! तू उसका पतिंगा न बन। काम और मद को छोड़कर श्री रामचंद्रजी का भजन कर और सदा सत्संग कर॥46 (ख)॥

मासपारायण, बाईसवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने तृतीयः सोपानः समाप्तः।

कलियुग के संपूर्ण पापों को विध्वंस करने वाले श्री रामचरितमानस का यह तीसरा सोपान समाप्त हुआ।

(अरण्यकाण्ड समाप्त)